श्रीविद्या

आगमतन्त्र की शोधपत्रिका
(षाण्मासिकी)

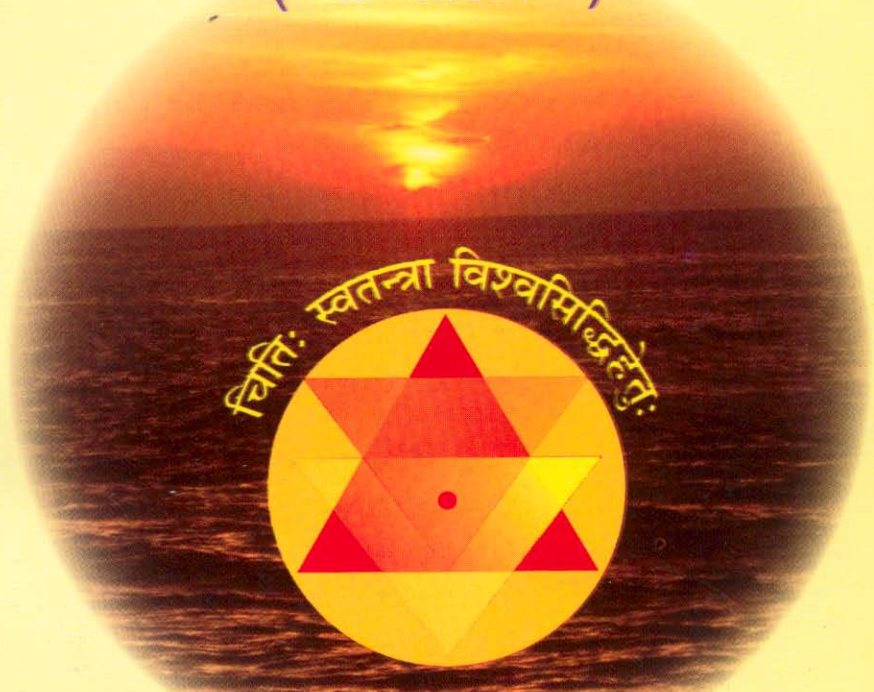

प्रकाशक
श्रीविद्या साधना पीठ
वाराणसी -उ.प्र.

अङ्क - ३

वर्ष २००८-०९

श्री ललितामहात्रिपुरसुन्दरी

अङ्क—तृतीय २००८—२००९

श्रीविद्या

(आगमतन्त्र की शोधपत्रिका)

षाण्मासिक

संस्थापक

श्री दत्तात्रेयानन्दनाथ जी

सम्पादक

कमलेशदत्त त्रिपाठी

चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धि–हेतुः

प्रकाशक

श्रीविद्यासाधनापीठ

वाराणसी (उ०प्र०)

प्रकाशक—

श्रीविद्यासाधनापापीठ
शिवसदन, नगवा, वाराणसी
दूरभाष : ०५४२—२३६६६२२

संस्थापक — आचार्य दत्तात्रेयानन्दनाथ जी

प्रकाशनवर्ष — अङ्क—तृतीय २००८—२००९

मूल्य : १२५/—

SRIVIDYA

Agamic-Tantrik Reseach Journal

(Bi-annual)

Founder Editor

Sri Dattatreyanandanatha

Editor

Prof. Kamleshdatt Tripathi

Srividyasadhana Pitha

Numbar-3 **Varanasi (U.P.)** **Year 2008-09**

Publishers :

Srividyasadhana Pitha

ShivShadan, Nagawa, Varanasi (U.P.)

Founder Editor

Sri Dattatreyanandanatha

Editor

Prof. Kamleshdatt Triathi

Publishing Year : 2008-09

Number : 3

Price: 125/-

अनुत्तराम्नायअधिष्ठात्री भगवती श्री शांकरी देवी

सम्प्रदायो हि नान्योऽस्ति लोके श्रीशङ्कराद्बहिः

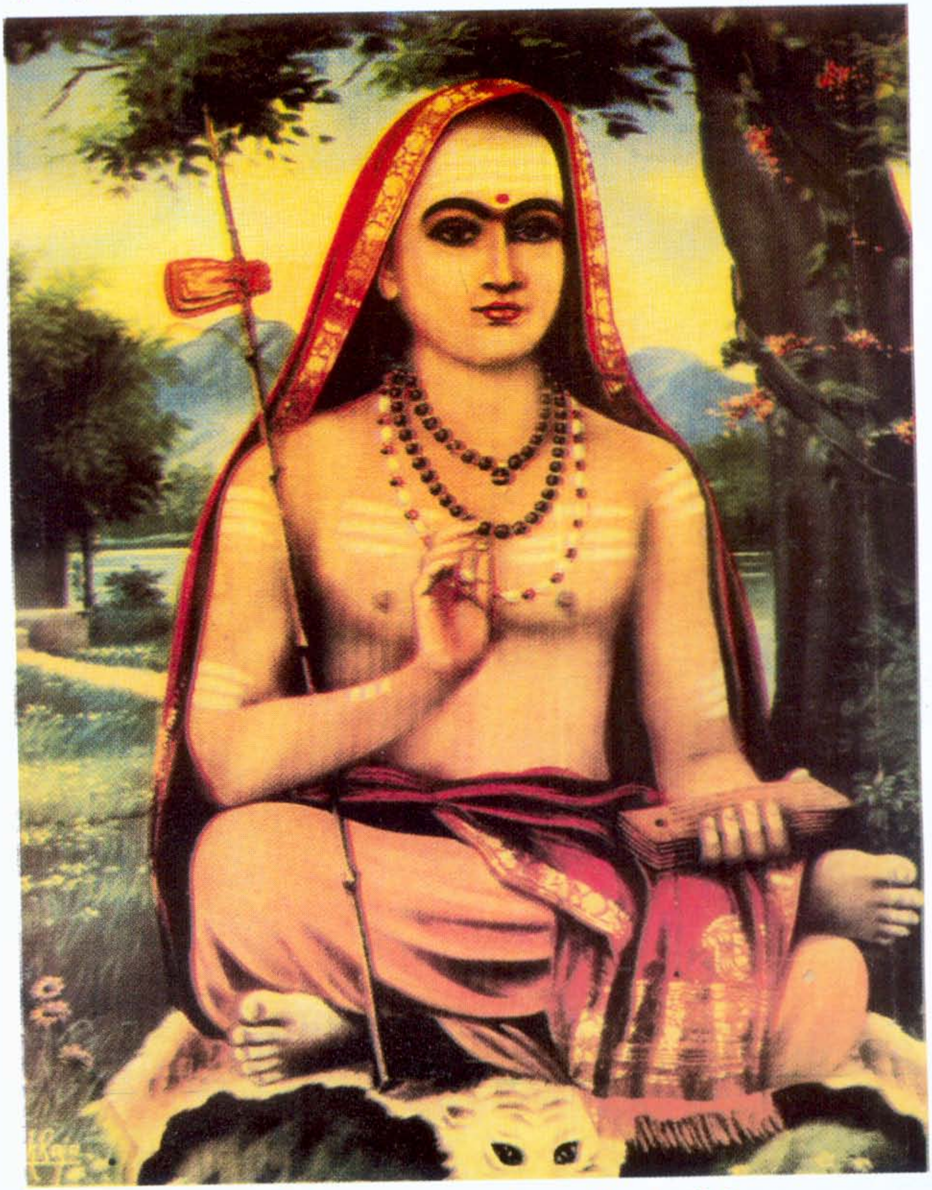

श्रीतस्मार्त विधानमानकलने वाग्वैभवं दर्शितम्,
पाखण्डस्थलखण्डने प्रकटितं शार्दूलविक्रीडितम्।
श्रीशैवागममन्त्रयन्त्रनिगमो येन स्फुटं ख्यापितः।
तन्त्राचार्यचणं सुदेशिकवरं श्रीशङ्करं भावये।।

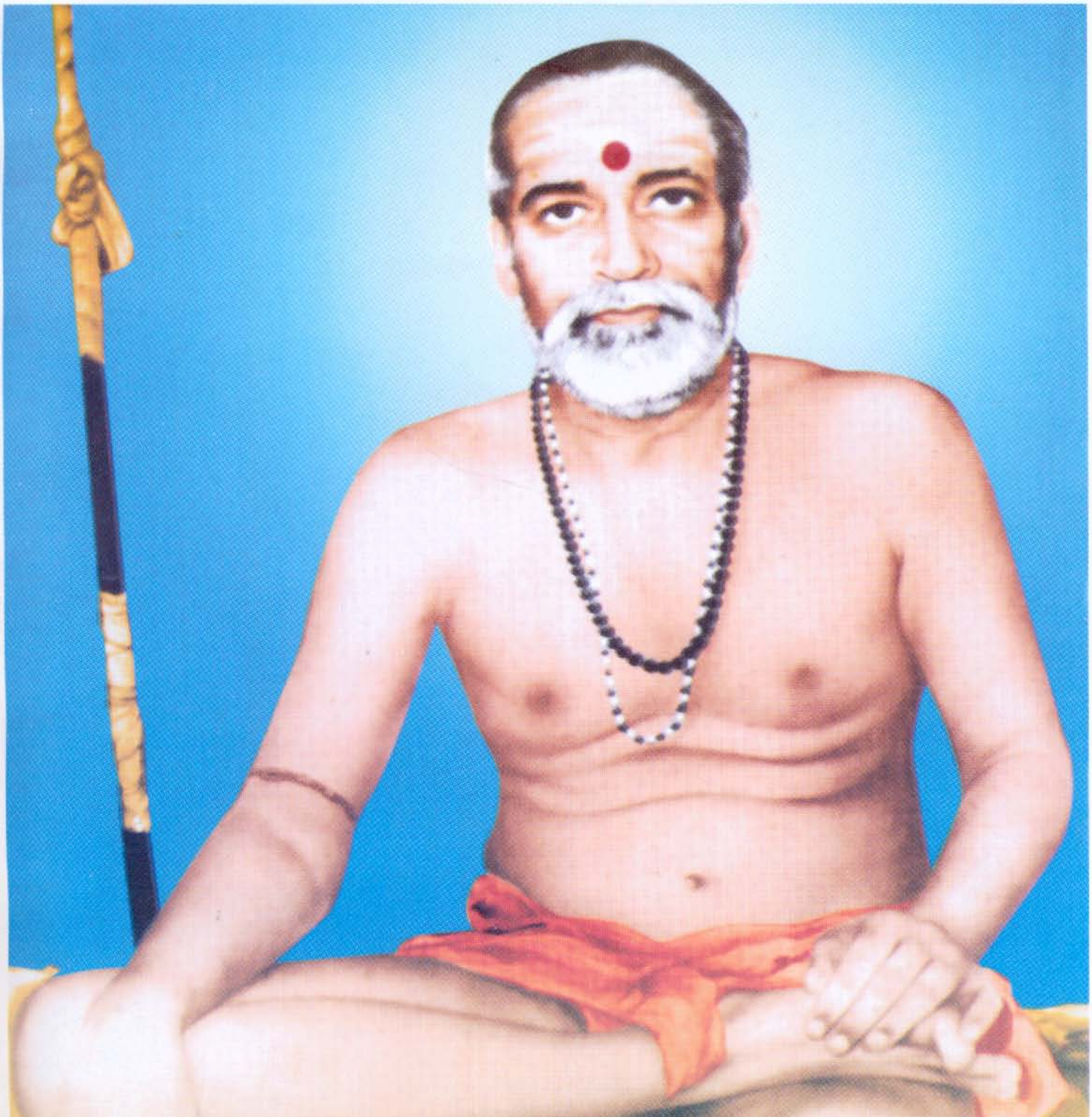

श्रीकरपात्री स्वामी (षोणशानन्दनाथ)

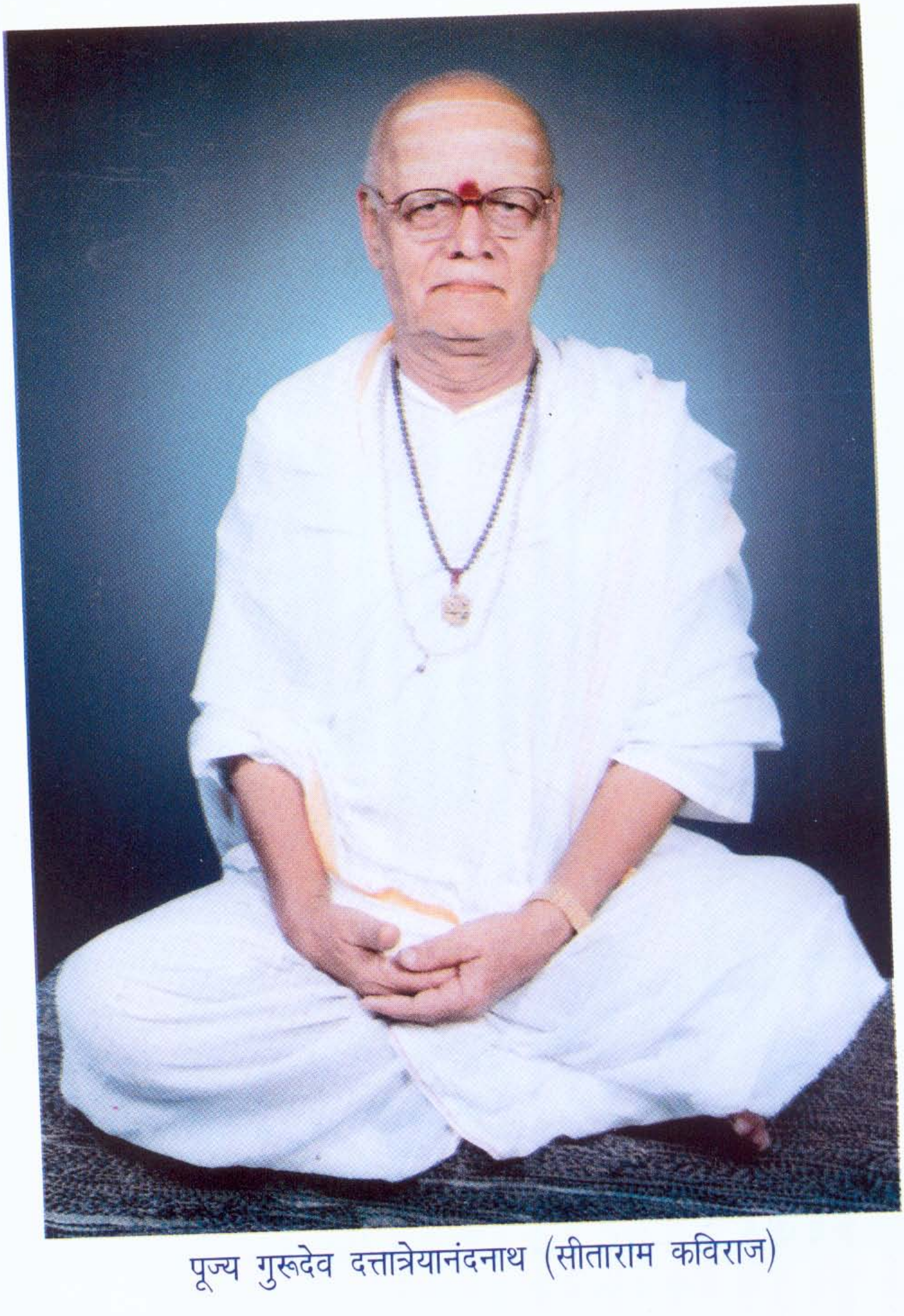

पूज्य गुरूदेव दत्तात्रेयानंदनाथ (सीताराम कविराज)

विषय–सूची

			पृष्ठ
१.	सम्पादकीय	– कमलेशदत्त त्रिपाठी	i-ii
२.	Editorial	– Kamleshdatt Tripathi	iii-iv
३.	कल्याणवृष्टि स्तोत्र	– श्रीदत्तात्रेयानन्दनाथ (पं०सीतारामकविराज)	१–४
४.	भावनोपनिषद् रहस्य	– श्रीदत्तात्रेयानन्दनाथ (पं०सीतारामकविराज)	५–११
५.	शक्ति–साधना	– महामहोपाध्याय श्री पं० गोपीनाथ कविराज	१२–२७
६.	श्री विद्या–साधना–सरणि	– श्रीदत्तात्रेयानन्दनाथ (पं०सीतारामकविराज)	२८–३९
७.	श्रीविद्या साधकों के लिये गुरुमुख से प्राप्त निर्देश	– कल्याणानन्दनाथ	४०–४९
८.	श्रीविद्यार्णव में श्रीविद्यात्तत्व एवं श्रीविद्यासाधना	– पं० गोविन्द चन्द्र पाण्डेय	५०–६३
९.	श्रीविद्यासाधनापीठ	– श्रीप्रकाशानन्दनाथ	६४–६६
१०.	शक्तितत्त्व और श्रीविद्योपासना	– प्रो. युगल किशोर मिश्र	६७–७१
११.	अनुत्तराम्नाय अधिष्ठात्री श्री शांकरी देवी	– श्रीप्रकाशानन्दनाथ	७२
१२.	श्रीभुवनेश्वरी महास्तोत्र:	– डॉ. अवन्तिका त्रिपाठी	७३–९१
१३.	श्रीललितासहस्रनामस्तोत्र की महिमा	– श्री गुरुमुख से	९२–९८
१४.	श्रीविद्या साधना पीठ की गतिविधियाँ	– डॉ रवि अग्रवाल	९९–१०२
१५.	Srividya : An Experience	– Shri Indresh Batra	१०३–१०६

परिशिष्ट

श्रीविद्यासाधनापीठ न्यास– आय–व्यय विवरण १०७–११३

॥ श्रीः॥

सम्पादकीय

वेद और आगम भारतीय चिन्तन एवम् आध्यात्मिक साधना के दिव्य स्रोत हैं। वेद कर्मकाण्ड एवं ज्ञानकाण्ड में विभक्त है। कर्मकाण्ड विशाल वैदिक वाङ्मय का बृहत्तर भाग है, किन्तु वेद का परिणत विचार ज्ञानकाण्ड में प्रतिष्ठित है, जो उपनिषद्भाग है, जिसको 'वेदान्त' नाम से अभिहित किया जाता है। 'श्रीमद्भगवद्गीता' उपनिषत्सारसर्वस्व है। इसीलिये भगवान् वेदव्यास ने उसे 'महाभारत' में प्रतिष्ठित किया है। या यों कहें कि 'महाभारत' में वर्णित कौरव–पाण्डव युद्ध के अवसर पर भगवान् कृष्ण ने उसे प्रकाशित किया।

ठीक इसी प्रकार आगम का सारसर्वस्व श्रीविद्या है। इसे भी भगवान् बादरायण व्यास ने 'ब्रह्माण्डपुराण' में श्रीललितासहस्रनाम के रूप में प्रतिष्ठित किया है। यह सहस्रनाम परम्पराप्राप्त है। भगवान् हयग्रीव ने महर्षि अगस्त्य को भगवती के उपासना मार्ग और उसके रहस्यों का उपदेश करने के अनन्तर इस सहस्रनाम को उनकी प्रार्थना पर प्रदान किया। वस्तुतः भारतीय आध्यात्मिक साधना के प्रस्थान को शक्तिमत्पारम्य और शक्तिपारम्य की दो दृष्टियों से समझा जा सकता है। निर्गुण, निर्विशेष, निष्कल परतत्त्व की प्राप्ति बिना जगन्माता के अनुग्रह के नहीं हो सकती है। पूज्य गुरुदेव कहा करते थे कि माता के द्वारा ही पिता का ज्ञान हो सकता है। अतः शक्ति साधना इसी दृष्टि से शक्तिपारम्य के आध्यात्मिक मार्ग से परतत्त्व को प्राप्त करने का मार्ग है। वस्तुतः परतत्त्व का अनुभव शक्तिमान् एवं शक्ति की अद्वयता में ही किया जाता हैं। शक्ति के स्वरूप का निरूपण आगमों का हृदय है। 'श्रीविद्या' उस शाक्ततत्त्व का मूर्धाभिषिक्त सार हैं। इसीलिये शिवसायुज्य प्राप्त पूज्य गुरुदेव ने श्रीविद्यासाधनापीठ की स्थापना कर और अनुत्तराम्नायाधिष्ठात्री भगवती शाङ्करीदेवी के विग्रह को प्रतिष्ठित कर भक्तों का उपकार किया। उत्तर भारत में हमारे अपने समय में श्रीविद्या के प्रतिष्ठापक अनन्तश्रीविभूषित स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती (षोडशानन्दनाथ जी) श्री करपात्र स्वामी, जिनका लोक विश्रुत अभिधान 'करपात्री स्वामी' है, के द्वारा प्रवर्तित मार्ग को दृढ़ करने तथा अपने उन पूज्य गूरु की इच्छा को परम मानते हुए श्रीविद्योपासना का प्रचार करने के लिये श्रीविद्यासाधनापीठ की स्थापना की। इस पीठ में श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरी का सहस्र, लक्ष, कोटिनामार्चन याग सतत अनुष्ठित किया और विशाल शिष्यमण्डली का निर्माण किया। आज काशी में श्रीविद्या की सतत उपासना का यह महत्त्वपूर्ण केन्द्र हैं।

पूज्य गुरुदेव ने श्रीविद्योपासना के प्रसार के लिये 'श्रीविद्यावार्ता' नाम की पत्रिका का शुभारम्भ भी किया, इसमें भगवती ललितामहात्रिपुरसुन्दरी के स्वरूप और माहात्म्य की चर्चा के साथ–साथ उपासना के रहस्यों का श्रीविद्या साधना पीठ परिवार के सदस्यों के लिये प्रकाशन तथा पीठ की गतिविधियों का विवरण भी दिया जाता था।

पूज्य गुरुदेव के शिवसायुज्य प्राप्त करने के अनन्तर उनके प्रधान शिष्य और पुत्र श्री प्रकाशानन्दनाथ जी ने पीठ का आध्यक्ष्य सम्हाला है। उनके मार्गदर्शन में पीठ का विकास हो रहा हैं। उनकी इच्छा है कि पीठ अपने प्रकाशन कार्यक्रम को और भी दृढ़ करे।

वस्तुतः पूज्य गुरुदेव ने स्वयं यह इच्छा ही प्रकट नहीं की थी, अपितु श्रीविद्यार्णव के सम्पादन और उसकी विवृति की रचना का का कार्य पूर्ण किया। यह ग्रन्थ अब दो विशाल खण्डों में छप चुका है और उसका औपचारिक लोकार्पण होना हैं। इसी प्रकाशन कार्यक्रम को पुष्ट करने के लिये 'श्रीविद्यावार्ता' के स्वरूप को किञ्चित् परिवर्तित कर अब इसे 'श्रीविद्या' पत्रिका के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। अब इस पत्रिका का शोधात्मक तथा रहस्यचिन्तनात्मक रूप और पुष्ट हो रहा है। परिशिष्ट में श्रीविद्यासाधनापीठ की गतिविधियों का विवरण दिया जाता रहेगा। 'श्रीविद्या'·साधकवृन्द के उपकार के लिये साधनापरकचिन्तन को भी यथापूर्ण सरलरीति में प्रस्तुत किया जाता रहेगा।

अपने नवीन रूप में 'श्रीविद्या' पत्रिका को समर्पित करते हुए हमें विश्वास है कि यह पत्रिका अपने गहन रहस्यचिन्तन, साधनापरक प्रश्नों के समाधान तथा श्रीविद्यासाधनापीठ की गतिविधियों के विवरण को श्रीविद्यासाधनापीठ परिवार तथा विद्वज्जगत् के सम्मुख रखकर 'श्रीविद्योपासना' के प्रचार–प्रसार के लक्ष्य को पूरा करेगी ही, इस दिशा में आचार्यों के गहन चिन्तन को भी प्रस्तुत कर सारे विश्व में चल रहे 'श्रीविद्या' सम्बन्धी चिन्तन को भी यथासमय प्रस्तुत कर सकेगी।

कमलेशदत्त त्रिपाठी

|| श्री ||

Editorial

Vedas and Agamas are divine sources of Indian thought and spiritual practice. Vedas are divided into two portions, namely Karmakanda (Ritualistic portion) and Jnana kanda (Philosophical portin), Karmakanda forms greater portion of the vedic literature. However, Jnana kanda is the culmenation of the Vedas. This philosophical portion is known as Upanisad and the same is termed as Vedanta. Srimadbhagvad Gita is the quintessential presentation of the Upanisadic Jnana. This the reason, why Maharsi Veda Vyasa placed it in Mahabharata. In other words, Lord Krsna revealed it on the occasion of the war between Kauravas and Pandavas. Similarly the quintessence of the Agamas is 'Srividya'. Maharsi Badaraayana vyasa placed it in Brahmanda, Purana in the form of 'Sri Lalitasahasranama'. This series of thousand names of the Sri Lalita has been received from an uninterrupted traditon. Lord Hayagriva taught it to sage Agastya at his request after having taught him the path of Upasana and its secrets. Indian spiritual practice may be understood in two ways i.e., The path in which 'Saktimat' is held to be ultimate and 2. The path in which 'Sakti' is taken to be ultimate. The 'Absolute', free form attributes, parts etc. can not be realized with the grace bestowed by the Divine Mother on the devotee. Late revered Guruji used to say that one can know the father through mother only. Threfore the path of Sakti is spiritual way to realize the Supreme Principle through this view of Sakti as the ultimate. In fact, the experience of the 'ultimate', 'Supreme' can take place only in the Nonduality of 'Saktimat' and 'Sakti'. Hence, the elaborate enunciation of the nature of Sakti forms the core of Agamas and 'Srividya' is supreme quntessence of the same Saktatattva'. This is why Late Revered Guruji bestowed his grace on the devotees with foundings 'Srividya sadhana Pitha' and installing the Image of the Presiding deity of Unuttara Amonaya, the Supreme Amnaya. In our own times Swami Hariharananda Sarasvati or "Karapatri', svami, who was popularly known as 'Svami Karapatri ji', rejuvenated and re-established 'Srividayay in North India. He was the Guru of our Guruji. Sri Dattatryanandanatha ji. Guruji established this Pitha in order to carry forward the mission of his own Guru, in quite consonance with his wishes, for the propagation of 'Srividaya'.

He started the continuous upasana in the form of sahasra, laksa, and kotyarcana yaga and created a huge circle of the devoted Sisyas around him. Today Srividya Sadhana Pitha is a significant centre of Srividyopasana in Varanasi.

Revered Gurudeva started a newsletter entitled Srividya Varta for the propagation of Srividya in which, besides the enunciation of nature and the glory of Sri Lalitamahatripurasundri, the Revelation of and secrets of Srividya upasana as well as the accounts of the activities of Pitha was published.

After the attainment of Sivahood of the Revered Gurudeva, his worthy son and the principal Sisya Prakasanandanathaji has taken over as the president of the Pitha.

The all out development of the pitha is taking place under his guidance. He intends to strengthen the programme of publication to a greater degree. Infact, Revered Gurudeva not only expressed his desire for such a strengthening of the publication programme but completed the editing of Srividyarnava and a gloss on it. Now this work is ready in two big volumes and awaiting its formal release. In order to strengthen this publication programme, the nomenclature of Srividyavarta has been changed a little and now it is being brought out as the journal Srividya. Now, in the form of a journal dedicated to the research and the thought over secrets of Srividyopasana, agamic spiritual pracice and rituals, its research oriented character will be more strengthened. The accounts of the activities of Srividya Sadhana Pitha will be published in the appendix as usual.

Presenting the journal Srividya in its new form we hope that we will achieve the goal of the propagation of the Srividyopasana. We shal discuss the questions of upasana for the benefit of Srividya Sadhana family and offer thought-provoking issues of research for the world of scholars. At the same time it will offer the deep thoughts of great masters and the work being carried out all over the world on Srividya.

Kamalesh Datta Tripathi

कल्याण–वृष्टिस्तोत्र

श्रीदत्तात्रेयानन्दनाथ

कल्याणवृष्टिभिरिवामृतपूरिताभिर्लक्ष्मीस्वयंवरणमङ्गलदीपिकाभि:।
सेवाभिरम्ब तव पादसरोजमूले नाकारि किं मनसि भक्तिमतां जनानाम्।। १।।

अम्ब! अमृतसे परिपूर्ण कल्याणकी वर्षा करने वाली एवं लक्ष्मी को स्वयं वरण करने वाली मङ्गलमयी दीपमाला की भाँति आपकी सेवाओं ने आपके चरणकमलों में भक्तिभाव रखने वाले मनुष्यों के लिये क्या नहीं कर दिया? अर्थात् उनके समस्त मनोरथों को पूर्ण कर दिया।

एतावदेव जननि स्पृहणीयमास्ते त्वद्वन्दनेषु सलिलस्थगिते च नेत्रे।
सान्निध्यमुद्यदरुणाायतसोदरस्य त्वद्विग्रहस्य सुधया परयाऽऽप्लुतस्य।। २।।

जननि! मेरी तो बस यही स्पृहा है कि परमोत्कृष्ट सुधा से परिप्लुत तथा उदीयमान अरुण–वर्ण सूर्य की समता करने वाले आपके अरुण अविग्रह के सानिध्य पहुँचकर आपकी वन्दनाओं के समय मेरे नेत्र अश्रुजल से परिपूर्ण हो जायँ।

ईशित्वभावकलुषा: कति नाम सन्ति ब्रह्मादय: प्रतियुगं प्रलयाभिभूता:।
एक: स एव जननि स्थिरसिद्धिरास्ते य: पादयोस्तव सकृत् प्रणतिं करोति।।३।।

माँ! प्रभुत्वभाव से कलुषित ब्रह्मा आदि कितने देवता हो चुके हैं, जो प्रत्येक युग में प्रलय से अभिभूत (विनष्ट) हो गये हैं, किन्तु एक वही शक्ति स्थिरसिद्धियुक्त विद्यमान रहता है, जो एक बार आपके चरणों में प्रणाम कर लेता है।

लब्ध्वा सकृत् त्रिपुरसुन्दरि तावकीनं कारुण्यकन्दलितकान्तिभरं कटाक्षम्।
कन्दर्पभावसुभगास्त्वयि भक्तिभाज: सम्मोहयन्ति तरुणीर्भुवनत्रयेषु ।। ४।।

त्रिपुरसुन्दरि! आपमें भक्तिभाव रखनेवाले भक्तजन एक बार भी आपके करुणा से अंकुरित सुशोभन कटाक्ष को पाकर कामदेव–सदृश सौन्दर्यशाली हो जाते हैं और त्रिभुवन में युवतियों को सम्मोहित कर लेते हैं।

ह्रींकारमेव तव नाम गृणन्ति वेदा मातस्त्रिकोणनिलये त्रिपुरे त्रिनेत्रे।
यत्संस्मृतौ यमभटादिभयं विहाय दीव्यन्ति नन्दनवने सह लोकपालै:।। ५।।

त्रिकोण में निवास करनेवाली एवं तीन नेत्रों से सुशोभित माता त्रिपुरसुन्दरि! वेद 'ह्रीं' कारको ही आपका नाम बतलाते हैं। वह नाम जिनके संस्मरण में आ गया, वे भक्तजन यमदूतों के भय को त्यागकर लोकपालों के साथ नन्दनवन में क्रीडा करते हैं।

हन्तुः पुरामधिगलं परिपूर्यमाणः क्रूरः कथं तु भविता गरलस्य वेगः।
आश्वासनाय किल मातरिदं तवार्धे देहस्य शश्वदमृताप्लुतशीतलस्य॥ ६॥

माता! निरन्तर अमृत से परिप्लुत होने के कारण शीतल बने हुए आपके शरीर का यह अर्धभाग जिनके साथ संलग्न था, उन त्रिपुरहन्ता शंकरजी के गले में भरा हुआ हलाहल विष का वेग उनके लिये अनिष्टकारक कैसे होता?

सर्वज्ञतां सदसि वाक्पटुतां प्रसूते देवि त्वदङ्घ्रिसरसीरुहयोः प्रणामः।
किं च स्फुरन्मुकूटमुज्ज्वलमातपत्रं द्वे चामरे च वसुधां महतीं ददाति॥ ७॥

देवि! आपके चरणकमलों में किया हुआ प्रणाम सर्वज्ञता और सभा में वाक्चातुर्य तो उत्पन्न करता ही है, साथ ही उद्भासित मुकुट, श्वेत छत्र, दो चामर और विशाल पृथ्वी का साम्राज्य भी प्रदान करता है।

कल्पद्रुमैरभिमतप्रतिपादनेषु कारुण्यवारिधिभिरम्ब भवत्कटाक्षैः ।
आलोकय त्रिपुरसुन्दरि मामनाथं त्वय्येव भक्तिभरितं त्वयि दत्तदृष्टिम्॥ ८॥

माँ त्रिपुरसुन्दरि! मैं आपकी ही भक्ति से परिपूर्ण हूँ और आपकी ओर ही दृष्टि लगाये हुए हूँ, अत: आप मुझ अनाथ की ओर मनोरथों को पूर्ण करने में कल्पवृक्ष–सदृश एवं करुणासागरस्वरूप अपने कटाक्षों से देख तो लें।

हन्तेतरेष्वपि मनांसि निधाय चान्ये भक्तिं वहन्ति किल पामरदैवतेषु।
त्वामेव देवि मनसा वचसा स्मरामि त्वामेव नौमि शरणं जगति त्वमेव॥ ९॥

देवि! खेद है कि अन्यान्य जन आपके अतिरिक्त अन्य निम्न देवताओं में भी मन लगाकर उनकी भक्ति करते हैं, किन्तु मैं मन और वचन से आपका ही स्मरण करता हूँ, आपको ही प्रणाम करता हूँ, क्योंकि जगत् में आपही शरणदात्री हैं।

लक्ष्येषु सत्स्वपि तवाक्षिविलोकनानामालोकय त्रिपुरसुन्दरि मां कथचित्।
नूनं मयापि सदृशं करुणैकपात्रं जातो जनिष्यति जनो न च जायते च।। १०।।

त्रिपुरसुन्दरि! यद्यपि आपके नेत्रों के लिये देखने के बहुत से लक्ष्य वर्तमान हैं, तथापि किसी प्रकार आप मेरी ओर दृष्टि डाल दें, क्योंकि निश्चय ही मेरे समान करुणा का पात्र न कोई पैदा हुआ है और न हो रहा है और न पैदा होगा।

ह्रीं ह्रीमिति प्रतिदिनं जपतां जनानां किं नाम दुर्लभमिह त्रिपुराधिवासे।
मालाकिरीटमदवारणमाननीयांस्तान् सेवते मधुमती स्वयमेव लक्ष्मीः।। ११।।

त्रिपुर में निवास करने वाली माँ! 'ह्रीं, ह्रीं'— इस प्रकार (आपके बीजमन्त्र का) प्रतिदिन जप करने वाले मनुष्यों के लिये इस जगत् में क्या दुर्लभ है? माला, किरीट और उन्मत्त गजराज से युक्त उन माननीयों की तो स्वयं मधुमती लक्ष्मी ही सेवा करती हैं।

सम्पत्कराणि सकलेन्द्रियनन्दनानि साम्राज्यदानकुशलानि सरोरुहाक्षि।
त्वद्वन्दनानि दुरितौघहरोद्यतानि मामेव मातरनिशं कलयन्तु नान्यम्।। १२।।

कमलनयने! आपकी वन्दनाएँ सम्पत्ति प्रदान करने वाली, समस्त इन्द्रियों को आनन्दित करने वाली साम्राज्य प्रदान करने में कुशल और पापसमूह को नष्ट करने में उद्यत रहने वाली हैं, माता! वे निरन्तर मुझे ही प्राप्त हों, दूसरे को नहीं।

कल्पोपसंहरणकल्पितताण्डवस्य देवस्य खण्डपरशोः परमेश्वरस्य।
पाशांकुशैक्षवशरासनपुष्पबाणा सा साक्षिणी विजयते तव मूर्तिरिका।। १३।।

कल्पके उपसंहार के समय ताण्डव नृत्य करने वाले खण्डपरशु देवाधिदेव परमेश्वर शंकर के लिये पाश, अंकुश, ईख का धनुष और पुष्पबाण को धारण करने वाली आपकी वह एकमात्र मूर्ति साक्षीरूप से सुशोभित होती है।

लग्नं सदा भवतु मातरिदं तवार्धं तेजः परं बहुलकुंकुमपङ्कशोणम्।
भास्वत्किरीटममृतांशुकलावतंसं मध्ये त्रिकोणमुदितं परमातृतार्द्रम्।। १४।।

माता! आपका यह अर्धाङ्ग, जो परम तेजोमय, अत्यधिक कुंकुमपङ्क से युक्त होने के

कारण अरुण, चमकदार, किरीट से सुशोभित, चन्द्रकला से विभूषित, अमृत से परमार्द्र और त्रिकोण के मध्य में प्रकट है, सदा शिवजी से संलग्न रहे।

ह्रींकारमेव तव धाम तदेव रूपं त्वन्नाम सुन्दरि सरोजनिवासमूले।
त्वत्तेजसा परिणतं वियदादिभूतं सौख्यं तनोति सरसीरुहसम्भवादेः।। १५।।

कमल पर निवास करने वाली सुन्दरि! 'ह्रीं, कार ही आपका धाम है, वही आपका रूप है, वही आपका नाम है और वही आपके तेज से उत्पन्न हुए आकाशादि से क्रमशः परिणत—जगत् का आदिकारण है, जो ब्रह्मा, विष्णु आदि की रचित—पालित वस्तु बनकर परम सुख देता है।

ह्रींकारत्रयसम्पुटेन महता मन्त्रेण संदीपितं
स्तोत्रं यः प्रतिवासरं तव पुरो मातर्जपेन्मन्त्रवित्।
तस्य क्षोणिभुजो भवन्ति वशगा लक्ष्मीश्चिरस्थायिनी
वाणी निर्मलसूक्तिभारभरिता जागर्ति दीर्घंवयः।। १६।।

माँ! जो मन्त्रज्ञ तीन 'ह्री' कार से सम्पुटित महान् मन्त्र से संदीपित इस स्तोत्र का प्रतिदिन आपके समक्ष जप करता है, उसके राजालोग वशीभूत हो जाते हैं, उसकी लक्ष्मी चिरस्थायिनी हो जाती है, उसकी वाणी निर्मल सूक्तियों से परिपूर्ण हो जाती है और वह दीर्घायु हो जाता है।

इति श्रीमदाद्यशंकराचार्यविरचितं कल्याणवृष्टिस्तोत्रं सम्पूर्णम्।।

भावनोपनिषद् (रहस्य)

— श्रीदत्तात्रेयानन्दनाथ

भगवती श्रीललिता महात्रिपुरसुन्दरी की उपासना के तीन प्रकार बताये गये हैं– १. स्थूल, २. सूक्ष्म और ३. पर, जो क्रमशः कायिक, वाचिक और मानसिक होते हैं। इन्हीं को बहिर्याग, अन्तर्याग और महायाग नामों से व्यवहृत किया जाता है। इनमें स्थूलरूप है श्रीयन्त्र का पूजोपचारों से विधिवत् अर्चन करना, सूक्ष्मरूप है श्रीविद्या–महामन्त्रका अर्थानुसन्धानपूर्वक षट्चक्रों का ध्यान करते हुए जप करना और उपासना का अन्तिम या 'पर' रूप है अन्तःकरण (मन, चित्त, अहंकार और बुद्धि) एवं शरीर के समस्त अवयवों को श्रीचक्ररूप में भावित करना।

प्रस्तुत भावनोपनिषद् श्रीविद्योपासना के इसी तृतीय प्रकार परा–उपासनारूप महायाग का प्रतिपादन करती है, जो अथर्वदेव का एक भाग होकर **'श्रीगुरुः सर्वकारणभूता शक्तिः'** से प्रारम्भ होकर **'भावनापरो जीवन्मुक्तो भवति, स एव शिवयोगीति निगद्यते'** के साथ ३५ सूत्रों में और अन्तिम दो उपसंहार–सूत्रोंसहित ३७ सूत्रों में परिसमाप्त होती है।

श्रीगुरुः सर्वकारणभूता शक्तिः॥ १॥
तेन नवरन्ध्ररूपो देहः ॥ २॥

इस उपासना में समस्त क्रियाओं की कारणभूता शक्ति श्रीगुरुको माना गया है और उनके साथ नवरन्ध्ररूप देह अभिन्न है। यहाँ 'तेन' शब्द में अभेदार्थ में तृतीया विभक्ति हुई है।

श्रीगुरुः– तन्त्रशास्त्र में गुरु के तीन विभाग हैं– १. दिव्य, २. सिद्ध और ३. मानव। तन्त्रों में ये ही प्रकाशानन्दनाथ आदि नौ नामों से प्रसिद्ध हैं। श्रीयन्त्र में सर्वप्रथम इन्हीं का पूजन करके, श्रीचक्रस्थ विभिन्न शक्तियों का अर्चन किया जाता है। ये ही नवनाथ दिव्यौघ, सिद्धौघ और मानवौघ रूप में पूजित होते हैं। श्रीविद्यार्णव में इनका विस्तार द्रष्टव्य है। ये ही श्रीगुरु इष्टदेवता के अनुग्रह से उत्पन्न विवेक द्वारा शिष्य के समस्त संशयो का छेदन, मन्त्रवीर्य को प्रकाशित और तात्त्विक ज्ञान–प्रदान द्वारा शिष्य को अपने समान विवेकी (सदसद्बोधसम्पन्न) तथा बुद्धि–शक्ति से समन्वित कर देते हैं।

नवरन्ध्ररूपः– मानव–शरीर में नेत्र–कर्णादि नौ रन्ध्र या छिद्र प्रसिद्ध हैं, इनमें नौ गुरुओं की भावना करनी चाहिये। इनमें एक मुख और दो श्रोत्र ये तीन दिव्यौघ गुरु हैं, दो चक्षु और एक

उपस्थ— ये तीन सिद्धौघ गुरु हैं और दो नासिकाएँ और एक पायु— ये तीन मानवौघ गुरु हैं। इस तरह मानव—शरीर में नौ रन्ध्र नौ गुरुओं के रूप में स्थित हैं।

विषय के स्पष्टीकरण के लिये ज्ञातव्य है कि मानव शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियाँ हैं और उनमें ज्ञान एवं समस्त शक्तियाँ भी हुई हैं। इन बहत्तर हजार नाड़ियों में १४ नाड़ियाँ ऐसी हैं, जो उपर्युक्त चक्षु आदि नौ रन्ध्रों से सम्बद्ध हैं, जो इनका नियमन करती हैं। इन १४ नाडियों के नाम हैं— १. सुषुम्ना, २. अलम्बुसा, ३. कुहू, ४. विश्वोदरा, ५. वारणा, ६. हस्तिजिह्वा, ७. यशोवती, ८. इडा, ९. पिङ्गला, १०. गान्धारी, ११. पूषा, १२. शङ्खिनी, १३. पयस्विनी और १४. सरस्वती। ये नाड़ियाँ मूलाधार चक्र से निकलकर पृष्ठवंश (मेरुदण्ड) से होती हुई शिर:स्थित ब्रह्मरन्ध्र तक जाती हैं और चक्षु आदि नौ रन्ध्रों से सम्बद्ध हैं। इनमें सुषुम्ना नाडी प्रधान है और वह मूलाधार में स्थिति त्रिकोण में पराशक्ति कुण्डलिनी से सम्बद्ध है जबकि नौ अन्य नाडियाँ नौ छिद्रों से सम्बद्ध हैं। विश्वोदरा और वारणा— ये दो नाडियाँ दक्षिण और वाम पार्श्व (पसली) में अवस्थित है, जबकि हस्तिजिह्वा और यशोवती पादाङ्गुष्ठपर्यन्त विस्तृत हैं। इस प्रसङ्ग के अवबोधार्थ नाडियों का इतना ही संक्षिप्त विवेचन पर्याप्त है।

इन सभी नाड़ियों में समस्त शक्तियाँ भरी होने पर भी प्राय: ये सुप्तावस्था में ही रहती हैं। तन्त्रोक्त तत्तत् मन्त्रों द्वारा ततत् नाड़ियों का जागरण करने पर उनमें निहित शक्तियाँ प्रादुर्भूत हो उठती हैं। पूर्वोक्त नवरन्ध्रकी नौ नाड़ियों का जब गुरुपादुका मन्त्र द्वारा पराशक्ति कुण्डलिनी से सम्बन्ध हो जाता है, तब उनमें विलक्षण शक्तियाँ प्रादुर्भूत होती हैं। इस प्रकार गुरु—प्रदत्त मन्त्रशक्ति के प्रभाव से साधक अपने शरीर में सरलता के साथ शक्तियों का प्राकट्य कर लेता है। अतएव साधना—पथ में श्रीगुरु ही सर्वकारणभूता शक्ति हैं।

मन्त्ररहस्य के ज्ञाता, समस्त शक्ति के प्रदाता इन श्रीगुरुदेव एवं अपने इष्टदेव में अभेद भावना होनी चाहिये। इष्टदेवता के समान गुरुदेव में भी श्रद्धा होने पर गुरुकृपा द्वारा रहस्यों का ज्ञान होता है। और शिष्य में स्थित चैतन्य समन्वित होकर सामरस्यभावापन्न हो जाता है। फलत: श्रीगुरु में स्थित ज्ञानराशिका शिष्य में संक्रमण होता है। उसकी नाड़ियों के स्रोत खुल जाते हैं तथा उनसे अजस्र शक्तिधारा प्रवाहित होने लगती है, तब शिष्य गुरुवत् भासने लगता है। यह सब एकमात्र गुरु के प्रति श्रद्धा और उनकी शुश्रूवा से ही लभ्व है। श्रीगुरु प्रसन्न होकर स्वकीय मन्त्रबल से शिष्य का मलापनोदन एवं षडध्वशोधन कर उसमें शक्तिपात कर देते हैं। तदनन्तर मन्त्रसंचार से

पूर्वोक्त सभी क्रियाएँ सम्पन्न हो जाती हैं।

नवचक्ररूपं श्रीचक्रम् ॥ ३॥

त्रैलोक्यमोहनादि नौ आवरणों वाले श्रीयन्त्र की नवरन्ध्रात्मक अपनी देह में भावना करे।

वाराही पितृरूपा। कुरुकुल्ला बलिदेवता माता॥ ४॥
पुरुषार्थाः सागराः॥ ५॥

देह में स्थित ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, बुद्धि आदि तथा माता–पिता के अस्थि–मांसादि जो अंश हैं, उनमें श्रीचक्रस्थ पितृरूप वाराही और मातृरूप कुरुकुल्ला की भावना करे। इसी प्रकार धर्मादि चार पुरुषार्थों में इक्षु (ईख) आसव, घृत और क्षीर–सागरों की भावना करें।

देहो नवरत्नद्वीपः ॥ ६॥
त्वगादिसप्तधातुरोमसंयुक्तः॥ ७॥
सङ्कल्पाः कल्पतरवस्तेजः कल्पकोद्यानम्॥ ८॥

देहस्थित रस–रक्तादि सप्त धातुओं तथा त्वचा और रोम में श्रीयन्त्रस्थ नवरत्नद्वीपों की भावना करे। उस द्वीप में जो कल्पवृक्ष हैं, वे अपने मनःसंकल्प ही हैं, ऐसा भक्ति करे। मनकी कल्पवृक्षों के उद्यानरूप में भावना करे।

रसनया भाव्यमाना मधुराम्लतिक्तकटुकषायलवणरसाः षड् ऋतवः॥ ९॥

जिह्वा से आस्वाद्य मधुरादि षड्रसों में (उद्यानपर छाये हुए) बसन्तादि षड्ऋतुओं की भावना करे।

ज्ञानमर्घ्यं ज्ञेयं हविर्ज्ञाता होता ज्ञातृज्ञानज्ञेयानामभेदभावनं श्रीचक्रपूजनम्॥ १०॥

रूप–रसादि बाद्य विषयों का ज्ञान ही अर्घ्य (पूजा सामग्री) है, ज्ञान के बाह्य विषय ही हवि (हवनद्रव्य) हैं और ज्ञाता (पूजक जीवात्मा) ही होता (हवनकर्ता) है–ऐसी भावना करे। इन ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय में अभेद–भावना करना ही श्रीचक्र का पूजन है।

नियतिः शृङ्गारादयो रसा अणिमादयः॥ ११॥
कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यपुण्यपापमया ब्राह्म्याद्यष्ट शक्तयः॥१२॥

देह में स्थित शृङ्गार, वीर आदि नौ रस और नियति (प्रारब्ध) ही श्रीचक्रगत त्रैलोक्यमोहन

चक्रस्थित (तीन रेखाओं में) पूजनीय अणिमादि (अणिमा, लघिमा, महिमा, ईशित्व, वशित्व, प्राकाम्य, भुक्ति, इच्छा, प्राप्ति और सर्वकाम) दस सिद्धियाँ हैं, ऐसी भावना करे।

काम, क्रोधादि षड्रिपु और पुण्य एवं पाप– ये ही उसी त्रैलोक्य–मोहन चक्र में पूजनीय ब्राह्मी आदि आठ शक्तियाँ हैं, एसी भावना करे।

आधारनवकं मुद्राशक्तयः ॥ १३॥

शरीरस्थ अधर सहस्रार आदि नवचक्र ही श्रीचक्र में पूजनीय नव मुद्राएँ हैं, ऐसी भावना करें।

पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्पाणिपादपायूप–
स्थानि मनोविकारः कामाकर्षिण्यादि षोडश शक्तयः ॥ १४॥

शरीर में स्थित पृथिव्यादि पञ्चभूत, पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्च कर्मेन्द्रियाँ और विकृत (अशुद्ध) मन–ये सोलह श्रीचक्र के सर्वशक्तिपरिपूरक चक्र में पूजनीया कामाकर्षिणी आदि सोलह शक्तियाँ हैं, ऐसी भावना करे।

वचनादानगमनविसर्गानन्दहानोपादानोपेक्षाख्यबुद्धयोऽनङ्गकुसुमाद्यष्टौ॥ १५॥

शरीरस्थ कर्मेन्द्रियों के वचन (बोलना) आदि पाँच विषय और हान (त्यागना), उपादान (ग्रहण करना) तथा उपेक्षा (औदासीन्य) ये तीन बुद्धियाँ मिलकर आठ वस्तुएँ ही श्रीचक्रस्थ सर्वसंक्षोभण चक्र में पूजनीया अनङ्ग–कुसुमादि आठ शक्तियाँ हैं, ऐसी भावना करे।

अलम्बुसाकुहूर्विश्वोदरावारणाहस्तिजिह्वायज्ञोवतीपयस्विनीगान्धारीपूषाशङ्खिनी–
सरस्वतीडा पिङ्गलासुषुम्ना चेति चतुर्दश नाड्यः सर्वसंक्षोभिण्यादिचतुर्दश शक्तयः॥ १६॥

शरीर में स्थित पूर्वोक्त अलम्बुसा आदि चौदह नाडियाँ ही श्रीचक्र के सर्वसौभाग्यदायक चक्र में पूजनीया सर्वसंक्षोभिण्यादि चौदह शक्तियाँ हैं, ऐसी भावना करे।

प्राणापानव्यानोदानसमाननागकूर्मकृकरदेवदत्तधनञ्जया
दश वायवः सर्वसिद्धिप्रदादिबहिर्दशारदेवताः ॥ १७॥

शरीरस्थ प्राणादि पञ्च और नागादि पञ्चकुल दस वायु ही श्रीचक्र के सर्वार्थसाधक चक्र के बहिर्दशार में पूजनीय देवता हैं, ऐसी भावना करे।

एतद्वायुसंसर्गकोपाधिभेदेन रेचकः पाचकः शोषको दाहकः प्लावक इति प्राणमुख्यत्वेन पञ्चधा जठराग्निर्भवति।। १८।।

क्षारक उद्गारकः क्षोभको जृम्भको मोहक इति नागप्राधान्येन पञ्चविधास्ते मनुष्याणां देहगा भक्ष्यभोज्यचोष्यलेह्यपेयात्मकपञ्चविधमन्नं पाचयन्ति।। १९।।

एता दश वह्निकलाः सर्वज्ञाद्या अन्तर्दशारगा देवताः।। २०।।

शरीरस्थित प्राणप्राधान्येन पाँच और नागप्राधान्येन पाँच–कुल दस प्रकार की जठराग्नि ही (जिन्हें आयुर्वेद में 'पित्त' कहा जाता है) जो भक्ष्यादि पञ्चविध अन्नको पचाते हैं, श्रीचक्रस्थित सर्वरक्षाकर चक्र के अन्तर्दशार में पूजनीया सर्वज्ञादि दस शक्तियाँ हैं, ऐसी भावना करे।

शीतोष्णसुखदुःखेच्छाः सत्त्वं रजस्तमा वशिन्यादिशक्तयोऽष्टौ।। २१।।

शरीरस्थ शीत, उष्ण, सुख, दुःख, इच्छा तथा सत्त्व, रज और तम–ये तीन गुण कुल आठ पदार्थ श्रीचक्रस्थित सर्वरोगहर (अष्टारः) चक्र में पूजनीया वशिनी आदि आठ शक्तियाँ हैं, ऐसी भावना करे।

शब्दादितन्मात्राः पञ्च पुष्पबाणाः।। २२।।
मन इक्षुधनुः।। २३।।
रागः पाशः।। २४।।
द्वेषोऽङ्कुशः।। २५।।

शरीरस्थ शब्दादि पञ्चन्मात्राएँ (सूक्ष्मभूत) श्रीचक्र के सर्वसिद्धिप्रद चक्र के त्रिकोण में पूजनीया भवगती के पञ्च पुष्पबाण हैं। अविकृत मन ही भगवती के हाथ में स्थित इक्षु (ईख की धनुष) है। राग (सांसारिक प्रेम) ही भगवती के हाथ का पाश है। द्वेष ही भगवती के हस्त में स्थित अंकुश हैं, ऐसी भावना करे।

अव्यक्तमहदहंकाराः कामेश्वरीवज्रेश्वरीभगमालिन्योऽन्तस्त्रिकोणगा देवताः।। २६।।

अव्यक्त (प्रकृति), महत्तत्व और अहंकार ही सर्वसिद्धिप्रद चक्र के त्रिकोण के भीतर पूजनीया कामेश्वरी, वज्रेश्वरी और भगमालिनी नामक देवता हैं, ऐसी भावना करे।

निरुपाधिकसंविदेव कामेश्वरः।। २७।।

निरुपाधिक संवित् (शुद्ध चैतन्य) ही सर्वानन्दमय चक्र में पूजनीय बिन्दुरूप कामेश्वर है, ऐसी भावना करे।

सदानन्दपूर्णा स्वात्मैव परदेवता ललिता।। २८।।

किञ्चित् उपाधिविशिष्ट होने से स्वात्मस्वरूप ही कामेश्वर के अङ्कमें विराजमान सदानन्दपूर्ण ललिता त्रिपुरसुन्दरी है और यही उपास्या है, ऐसी भावना करे।

लौहित्यमेतस्य सर्वस्य विमर्शः।। २९।।

कामेश्वर, ललिता और स्वयं (साधक) इन तीनों का विमर्श ही देवी ललितागत लौहित्य (रक्तवर्णता) है। भाव यह कि रक्त–शुक्ल–प्रभा से मिश्र अतर्क्य कामेश्वर–कामेश्वरी के श्वेत–रक्तचरण उपास्य है।

अनन्यचित्तत्वेन च सिद्धिः।। ३०।।

नौ आवरणों के प्रत्येक आवरण में एक–एक सिद्धि और एक–एक मुद्रा का विशेष अर्चन होता है। वे मुद्राएँ और सिद्धियाँ मुझ से अभिन्न हैं, इस प्रकार की अनन्य–चित्तता ही सिद्धि है।

भावनायाः क्रिया उपचारः।। ३१।।

बार–बार अपनी आत्मा के साथ अभेद रूप से ललिताम्बा की भावना ही पूजा का उपचार (पाद्य, अर्घ्यादि सामग्री) है।

अहं त्वमस्ति नास्ति कर्तव्यमकर्तव्यमुपासितव्यमिति विकल्पानामात्मनि विभावनं होमः।।३२।।

मैं, तुम, अस्ति, नास्ति, कर्तव्य, अकर्तव्य, उपास्य– इन संकल्प–विकल्पों का आत्मा में विभावन करना ही होम है।

भावनाविषयाणामभेदभावना तर्पणम्।। ३३।।

भावना के विषयो में अभेद–भावना ही तर्पण है। भाव यह कि गुरु आदि से होमपर्यन्त जितने पदार्थ भावित किये गये हैं या किये जायेगे, उन सबमें अभेद भावना करके केवल

स्वात्ममात्र अवशेष की स्थिति ही तर्पण है।

पञ्चदशतिथिरूपेण कालस्य परिणामावलोकनस्थितिः पञ्चदश नित्याः।। ३४।।

श्रीचक्र के अन्तस्त्रिकोण में कामेश्वर्यादि पञ्चदश नित्याएँ पूजित हैं। प्रतिपद् आदि पञ्चदश तिथियों में उन्हीं की भावना कर काल के परिणामका अवलोकन करना उन पञ्चदश नित्याओं का पूजन है।

एवं मुहूर्तत्रितयं मुहूर्तद्वितयं मुहूर्तमात्रं वा भावनापरो जीवन्मुक्तो भवति स एव शिवयोगीति गद्यते।। ३५।।

इस प्रकार तीन मुहूर्त, दो मुहूर्त या एक मुहूर्त भी स्वात्मविषयिणी श्वासस्तम्भसहित निर्विकल्पवृत्ति रखनेवाला तथा इतर भावनाओं से रहित धारावाहिक रूप में उसी भावना में आसक्त रहने वाला जी शीघ्र ही जीवन्मुक्तिरूप फल का अधिकारी हो जाता है। वही शिवयोगी कहलाता है।

कादिमतेनान्तश्चक्रभावनाः प्रतिपादितः।। ३६।।

य एवं वेद सोऽथर्वशिरोऽधीते ।। ३७।।

यहाँ कादिमत से अन्तश्चक्रभावना का प्रतिपादन किया गया है। तीनों वेद तो बहिरङ्ग कर्मो का प्रतिपादन करते हैं, किन्तु अथर्ववेद अन्तरङ्ग कर्मो का प्रचुर मात्रा में प्रतिपादन करता है। इसकी अर्थानुसन्धानपूर्वक जो भावना करता है, वह अथर्वशिरका (वास्तविक) अध्येता होता है

श्रीभास्करराय अन्त में इसकी फलश्रुति में लिखते हैं– 'तस्य चिन्तितकार्याणि अयत्नेन सिद्ध्यन्ति' अर्थात् इस प्रकार भावना करने वाले साधक के सभी चिन्तित कार्य बिना बाह्य प्रयत्न के सिद्ध हो जाते हैं। यह शिवयोगी हो जाता है।

शक्ति—साधना

महामहोपाध्याय

पं० श्रीगोपीनाथ जी कविराज,

एम० ए०

जो विचारशील हैं तथा साधनराज्य में प्रविष्ट हैं, वे जानते हैं कि साधनामात्र ही शक्ति की आराधना है, क्योंकि किसी भी मनुष्य की अन्तर्दृष्टि के सम्मुख चाहे कैसा भी आदर्श लक्ष्यरूप में प्रतिष्ठित क्यों न हो, यदि वह शक्तिसंचय करते हुए अपनी दुर्बलता का परिहार न कर सके तो सम्यग्रूप से उस आदर्श की उपलब्धि कर उसे आत्मस्वरूप में परिणत करने में वह समर्थ न होगा। समस्त सिद्धियाँ शक्तिसापेक्ष हैं। अतएव साधक को चाहे जैसी सिद्धि अभीष्ट हो, उसका आत्मशक्ति के अनुशीलन बिना प्राप्त होना सम्भव नहीं।

इस प्रकार विचार करने से स्पष्ट समझ में आ जाता है कि शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य अथवा अन्य किसी भी देवता की उपासना मूलतः शक्ति की ही उपासना है। इस प्रकार से वैष्णवादि समस्त सम्प्रदायों की सारी साधनाएँ शक्ति—साधना के अन्तर्गत हैं। इसके अतिरिक्त साक्षात् भाव से भी शक्ति की साधना हो सकती है। यहाँ साक्षात् शक्ति—साधना के सम्बन्ध में संक्षेप में कुछ लिखा जा रहा है।

हम इन्द्रियद्वार में रूप, रसादि जिस पाञ्चभौतिक स्थूल—जगत् का अनुभव करते हैं, वह इन्द्रियों की उपशान्त अवस्था में तद्रूप में वर्तमान नहीं रहता। वस्तुतः एक तरह से बाह्य जगत् इन्द्रियों का ही बहिर्विलासमात्र है। चक्षु से ही रूप का विकास होता है तथा चक्षु ही पुनः उस रूप का दर्शन करता है। समष्टि—चक्षु रूप का स्रष्टा है और व्यष्टि—चक्षु उसका भोक्ता है। इसी प्रकार अन्यान्य इन्द्रियों के सम्बन्ध में भी समझना चाहिये। अतएव समष्टिभावापन्न पञ्चेन्द्रिय से भौतिक जगत् का विकास होता है तथा व्यष्टिगत पञ्चेन्द्रियाँ उस जगत् का सम्भोग करती हैं। इन्द्रियों का प्रत्याहार करके मूलस्थान में लीन कर सकने से एक ओर जहाँ बाह्य जगत् का लोप हो जाता है, वहीं दूसरी ओर इन्द्रियों के अभाव के कारण उनकी सम्भोग—सम्भावना ही निवृत्त हो जाती है। यदि पहले से ही चित्त—क्षेत्र में ज्ञान का सार हो तो इस अवस्था में विशुद्ध अन्तःकरण का आविर्भाव होता है तथा साथ ही साथ अन्तर्जगत् का स्फुरण होता है। बाह्य जगत् की भाँति अर्न्तजगत् में भी समष्टिभूत अन्तःकरण स्रष्टा है तथा व्यष्टि अन्तःकरण उसका भोक्ता है। जिसे

अन्तर्जगत् या आतिवाहिक जगत् के नाम से वर्णन करते हैं, वह वस्तुत: विशुद्ध अन्त:करण का बाह्य विकास मात्र है। बाह्येन्द्रियों की भाँति अन्त:करण की भी निरुद्धवृत्ति की अवस्था प्राप्त होने पर अन्तर्जगत् का लोप हो जाता है। इसके पश्चात् जीव शुद्ध कारणभूमि में स्थान पाता है। तब समष्टिकारण बिन्दु का स्फुरणात्मक कारण जगत् ही दृश्य होता है औ व्यष्टिकारण बिन्दु तदात्मकभाव से उस दृश्य का दर्शन करता है। सौभाग्यवश यदि कोई भाग्यवान् जीव इस मूल ग्रन्थि का भेदन कर पाता है तो वह मूल अविद्या के विलास स्वरूप इस मिथ्या प्रपञ्च के पाशजाल से सदा के लिये छुटकारा पा जाता है।

इस तरह स्थूल, सूक्ष्म और कारण जगत् शक्ति के ही विकासमात्र है। शक्ति के इन तीन विभागों अर्थात् आत्मा, देवता तथा भूतरूप में शक्ति की तीन प्रकार की अवस्थितिका अनुसरण करते हुए उसका परिणामस्वरूप जगत् भी कारणादि त्रिविधरूप में प्रकट होता है। शक्ति के बहिर्मुख होकर घनीभाव तथा स्थूलत्व को प्राप्त करने पर एक ओर जहाँ भौतिक तत्त्वों का आविर्भाव होता है, वहीं दूसरी ओर वह क्रमश: विरल होते–होते अन्त:संकोच अवस्था को प्राप्तकर 'आत्मा' अथवा 'बिन्दु' पदवाच्य हो जाती है। अतएव तथाकथित आत्मा देवता और भूत एक ही आद्याशक्ति की त्रिविध अवस्था मात्र है। वैसे ही कारण, लिङ्ग तथा स्थूल यह त्रिविध जगत् भी एक ही मूल सत्ता के तीन प्रकार के परिणाम के सिवा और कुछ नहीं है। शक्ति के साथ सत्ता का क्या सम्बन्ध है, सम्प्रति हम उसकी आलोचना नहीं करेंगे। फिर भी यह स्मरण रखना होगा कि दोनों के वैषम्य से ही जगत् की सृष्टि तथा सम्भोग, अर्थात् ईश्वरभाव और जीवभाव का उन्मेष होता है; किन्तु जब साम्य–अवस्था उदय होती है, तब एक ओर जहाँ जीव और ईश्वर का पारस्परिक भेद तिरोहित हो जाता है, वहीं दूसरी ओर सृष्टि और दृष्टि एकार्थबोधक व्यापार हो जाते हैं। तब भूमिभेद के अनुसार साम्यकी उपलब्धि होते–होते त्रिविध साम्य के बाद स्वाभाविक नियम से परमाद्वैत अथवा महासाम्य का आविर्भाव होता है। जो शक्ति और सत्ता स्थूलभूमि में आत्मप्रकाश किये हुए हैं, उनका साम्य ही प्रथम साम्य है। उसी प्रकार सूक्ष्म और कारण जगत् के सम्पर्क में रहने वाली शक्ति और सत्ता का साम्य क्रमश: द्वितीय और तृतीय साम्य के नाम से पुकारा जाता है यह त्रिविध साम्य पारस्परिक भेद का परिहार कर जिस महासाम्य में एकत्व लाभ करता है, वही परमाद्वैत या ब्रह्मत्व है। महाशक्ति के उद्‌बोधन के बिना इस अद्वैत तत्त्व में स्थिति लाभ करना तो दूर रहा, प्रवेशाधिकार पाने की भी सम्भावना नहीं है। कहने की

आवश्यकता नहीं कि भूमिभेद से प्रत्येक स्तर में शक्ति के उद्बोधन की आवश्यकता है। नहीं तो तत्तत् भूमि की सत्ता अचेतनभाव को त्यागकर स्वयंप्रकाश चैतन्य के साथ एकीभूत नहीं हो सकती, क्योंकि अनुद्बुद्ध शक्ति सत्ता की प्रकाशक नहीं होती और अप्रकाशमान सत्ता कभी चिद्भावापन्न नहीं हो सकती। वह असत्कल्प एवं जड़ता का ही नामान्तरमात्र होती है।

उपर्युक्त विश्लेषण से समझा जा सकता है कि शक्ति की आराधना के बिना एक ओर जिस प्रकार स्थूलभाव को आयत्त नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार दूसरी ओर आत्मसत्ता की भी उपलब्धि नहीं हो सकती। अत: पृथ्वी में जितने प्रकार के धर्मसम्प्रदाय है, उनमें शक्ति की आराधना किये बिना किसी का काम नहीं चलता।

यह अनन्त वैचित्र्यमय विश्व, जिसे हम निरन्तर नाना प्रकारसे अनुभव करते हैं, वस्तुत: शक्ति के आत्मप्रकाश के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। सूक्ष्म कारण–जगत्, लिङ्गात्मक सूक्ष्म–जगत् और इन्द्रियगोचर स्थूल जगत् शक्ति के विभिन्न विकासमात्र है। इस विश्व के मूल में जो पूर्ण सत्ता पारमार्थिक रूप में वर्तमान है, वही शक्ति का परम रूप है। विशुद्ध चैतन्य के नाम से वर्णन करने पर भी इसका ठीक परिचय नहीं दिया जा सकता। सच्चिदानन्द शब्द से वर्णन करने पर भी इसका ठीक–ठीक निर्देश नहीं किया जा सकता। इस वाणी और मन से अगोचर अनिर्देश्य अवर्णनीय परमार्थसत्ता को ही शास्त्र में 'परमपद' कहा गया है। यह सत् है या असत्– यह विषय लौकिक विचार के विषयीभूत न होने पर ही विचारदृष्टि से देखने पर आलोचनाप्रसङ्ग से यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इसमें प्रकाश और विमर्श ये दोनों अंश अविनाभूतरूप में वर्तमान हैं। प्रकाश के बिना जिस पकार विमर्श असम्भव है, उसी प्रकार विमर्श को त्यागकर प्रकाश की स्थिति भी सम्भव नहीं है। यह शिवशक्तिस्वरूप प्रकाश और विमर्श नित्य सम्बन्ध ही चैतन्यरूप से महापुरुषों की अनुभूति में आता है तथा शास्त्र में प्रचारित होता है; किन्तु चैतन्य होने पर भी वह प्रकाश और विमर्श की साम्यावस्था में अव्यक्त ही रह जाता है। इसी अवस्था का दूसरा नाम 'परम पद' है। इस साम्यवास्था में महाशक्तिस्वरूप अनादिशक्ति परम शिव के साथ सामरस्य भावापन्न होकर अद्वयरूप में विराजमान रहती है। स्वरूपदृष्टि से इस अवस्था को एक प्रकार से परब्रह्म–भाव का ही नामान्तर कहा जा सकता है, परंतु इसमें इसके स्वरूपभूत स्वातन्त्र्य के नित्य वर्तमान रहने के कारण यह ब्रह्मतत्त्व से विलक्षण ही है। महाशक्तिस्वरूप इस परम पद की जो बात यहाँ कही गयी है, उससे कोई भ्रमवश यह न समझे कि यही निष्कल अथवा पूर्णकल

परमेश्वर है; क्योंकि निष्कल, निष्कल–सकल तथा सकल– ये विश्व की ही तीन अवस्थाएँ हैं, परन्तु महाशक्ति सर्वातीत होने के कारण विश्वात्मक होते हुए भी वस्तुत: विश्वोत्तीर्ण है। इस विश्वातीत परम पद से इसी के स्वातन्त्र्यस्वरूप आत्मविलास से नित्य साम्य के भग्न न होते हुए भी एक प्रकार की भग्नवत् अवस्था का उद्भव होता है तथा इस वैषम्य के फलस्वरूप गुणप्रधान भाव में छत्तीस तत्त्वसमन्वित विश्व का आविर्भाव होता है। अखण्डपरमार्थस्वरूप के शिव–शक्ति से अभिन्नरूप होने पर भी स्वातन्त्र्यजनित विक्षोभ के कारण उसके द्वारा अथवा उसी में भेदमय विश्वप्रपञ्च का उदय होता है। अतएव त्रिविधविभाग विशिष्ट समस्त विश्व मूलत: शक्ति का ही विकास है, यह सुनिश्चित है।

कामरूपपीठ एवं स्वयम्भूलिङ्ग

जब यह पराशक्ति आत्मगर्भस्थ एवं अपने साथ एकीभूत विश्व को अर्थात् प्रकाश को देखने के लिये उन्मुख होती है, तब मात्रावच्छिन्न शक्ति और शिव साम्यभावापन्न होकर एक बिन्दुरूप में परिणत होते हैं, जिससे पारमार्थिक चैतन्य प्रतिफलित होकर ज्योतिर्लिङ्गरूप में प्रकटित होता है। यही बिन्दु तान्त्रिक परिभाषा में 'कामरूपपीठ' के नाम से प्रसिद्ध है। इस पीठ में अभिव्यक्त चैतन्य 'स्वयम्भूलिङ्ग' के नाम से परिचित है। यह शक्तिपीठ एक मात्रा शक्ति अंश और एक मात्रा शिवांश को समभाव में लेकर संघटित होता है। शक्ति और शिव के इस अंशद्वय को आचार्यगण शान्ताशक्ति और अम्बिकाशक्ति के नाम से वर्णन करते हैं। इस पीठ में महाशक्ति का आत्मप्रकाश परावाक्–रूप में प्रख्यात है। जिन्होंने तन्त्रानुमोदित योगसाधन का यथाविधि अभ्यास किया है वे जानते है कि यहीं से शब्दराज्य की सूचना होती है। यही प्रणवका परम रूप अथवा देव का स्वरूप है।

पूर्णगिरिपीठ एवं बाणलिङ्ग

इसके पश्चात् शक्ति के क्रमिक विकास के होते–होते शान्ताशक्ति 'इच्छा' रूप में परिणत होती है तथा शिवांश अम्बिकाशक्ति भी 'वामा' रूप में आविर्भूत होती है। इन दोनों शक्तियों के पारस्परिक वैषम्य का परिहार होने पर जिस अद्वय सामरस्यमय बिन्दु का आविर्भाव होता है, उससे तदनुरूप चैतन्य का स्फुरण होता है। इस बिन्दु को 'पूर्णगिरिपीठ' एवं इस चिद्विकास को 'बाणलिङ्ग' के नाम से समझना चाहिये। शास्त्रीय दृष्टि से यह 'पश्यन्ती वाक्' की अवस्था है। पराशक्ति शब्द की प्रथम भूमि में अथवा कामरूप पीठ में आत्मगर्भस्थ विश्व को नित्य वर्तमान रूप

में देखती है। वहाँ अतीत और अनागतरूप खण्डकाल की सत्ता नहीं है तथा दूर और निकट का व्यवधान भी नहीं है। कार्य और कारण का कठोर नियम यहाँ अपरिज्ञात है। इस नित्यमण्डल में किसी प्रकार का आवरण नहीं है और न किसी प्रकार का विक्षोम या चाञ्चल्य ही देखा जाता है। यह शान्तिमय अवस्था है।

नित्यमण्डल, जालन्धरपीठ और इतरलिङ्ग

इसके बाद इच्छाशक्ति उन्मेष के साथ–साथ शब्द के द्वितीय स्तर में सृष्टि का विकास होता है। जिसे 'नित्यमण्डल' कहा गया है, वह शक्ति–गर्भस्थ बीजभूत विश्व है। इच्छा के प्रभाव से जब उसके गर्भ के एकदेश से विसृष्टि होती है, तभी उसे सृष्टि नाम प्राप्त होता है। इस भूमि से ही कालका प्रभाव प्रारम्भ होने के कारण यह सृष्टिक्रिया एक साथ न होकर क्रमानुसार होती है। इसी प्रकार देश और कार्य–कारणभाव का स्फुरण भी यहाँ से समझना चाहिये। इसकी परावस्था में इच्छाशक्ति के उपराम होने पर ज्ञानशक्ति का उदय होता है तथा वह शिवांश ज्येष्ठाशक्ति के साथ अद्वैतभाव में मिश्रित होकर 'जालन्धरपीठ' सामरस्य बिन्दु की सृष्टि करता है। इस बिन्दु से अभिव्यक्त चैतन्य 'इतरलिङ्ग' नाम से प्रसिद्ध है। शक्ति के इस स्तर में 'मध्यमा वाक्' आविर्भूत होती है और इसके प्रभाव से सृष्ट जगत् तत्तद्भाव में स्थित होता है।

उड्डीयानपीठ एवं परलिङ्ग

जब स्थितिशक्ति क्षीण हो जाती है, तब स्वभाव के नियम से ही अन्तर्मुख आकर्षण की प्रबलता होने के कारण संहारशक्ति की क्रिया आरम्भ होती है। तब ज्ञानशक्ति क्रियाशक्ति के रूप में परिणत होकर शिवांश रौद्री शक्ति के साथ साम्यभाव को प्राप्त हो जाती है। उसके फलस्वरूप जिस अद्वैत बिन्दु का आविर्भाव होता है, उसे 'उड्डीयानपीठ' कहते हैं। इस बिन्दु से चिच्छक्ति महातेज: सम्पन्न 'परलिङ्ग' रूप में अभिव्यक्त होती है। यह शब्द की 'वैखरी' नामक चतुर्थ भूमि है। हम जिस संहारशील क्षयधर्मक जगत् का अनुभव करते हैं वह इस वैखरी शब्द की ही विभूति है।

प्रणव और त्रिकोण

पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी शब्द की जिन तीन अवस्थाओं के विषय में कहा गया है, वही प्रणव के 'अ' कार, 'उ' कार और 'म' कार हैं, अथवा ऋग्, यजु: और साम– इस वेदत्रयरूप में ज्ञानी की दृष्टि में प्रतिभात होती हैं। त्रिलोक़, त्रिदेवता, त्रिकाल प्रभृति अखण्ड

परावाक् अथवा तुरीयवाक् का ही त्रिविध परिणाममात्र हैं। बिन्दुगर्भित जो महात्रिकोण समस्त विश्वब्रह्माण्ड के मूलरूप में शास्त्रों में सर्वत्र व्याख्यात हुआ है, वह इसी चतुर्विध शब्द के सम्बन्ध से प्रकटित होता है। इस त्रिकोण की तीन रेखाएँ पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी तीन प्रकार के शब्द सृष्टि, स्थिति और संहाररूप तीन प्रकार के व्यापार वामा, ज्येष्ठा और रौद्री किंवा ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूप तीन प्रकार के शिवांश अथवा इच्छा, ज्ञान और क्रियारूप तीन शक्त्यंश के प्रतिनिधिमात्र हैं। त्रिकोण का मध्य बिन्दु परावाक् अथवा अम्बिका और शान्ता– इन दो शिवशक्त्यंशका साम्यभावापन्न स्वरूप है। यद्यपि बिन्दु में शिव और शक्ति दोनों का ही अंश है एवं त्रिकोण में भी वही है, तथापि बिन्दु प्रधानतः 'शिव' रूप में एवं त्रिकोण भी 'शक्ति' या 'योनि' रूप में परिणत हो जाता है। इस बिन्दुसमन्वित त्रिकोणमण्डल से समस्त बाह्य जगत् का आविर्भाव होता है।

आद्यशक्ति का स्वरूप–निर्वचन और आत्मदर्शन

आद्याशक्ति तत्त्वातीत होते हुए भी सर्वतत्त्वमयी और प्रपञ्चरूपा है। वह नित्या, परमानन्दस्वरूपिणी तथा चराचर जगत् की बीजस्वरूपा है। वह प्रकाशात्मक शिव के स्वरूपज्ञान का उद्बोधक दर्पणस्वरूप है। अहंज्ञान ही शिव का स्वरूप ज्ञान है। आद्याशक्ति का आश्रय लिये बिना इस आत्मज्ञान का प्रकाश नहीं हो सकता। आगमविद्गण कहते हैं कि जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने सामने स्थित स्वच्छ दर्पण में अपने प्रतिबिम्ब को देखकर उस प्रतिबिम्ब को 'अहं' रूप में पहचान लेता है, उसी प्रकार परमेश्वर अपने अधीन स्वकीया शक्ति को देखकर अपने स्वरूप की उपलब्धि करते हैं। आत्मशक्ति का दर्शन एवं आत्मस्वरूप की उपलब्धि करते हैं। आत्मशक्ति का दर्शन एवं आत्मस्वरूप की उपलब्धि और आस्वादन एक ही वस्तु है। यही पूर्णाहंता का चमत्कार अथवा सच्चिदानन्द की घनीभूत अभिव्यक्ति है। 'मैं पूर्ण हूँ'– यह ज्ञान ही नित्यसिद्ध आत्मज्ञान का प्रकृत स्वरूप है। वस्तु का सामीप्य सम्बन्ध न होने पर जैसे दर्पण प्रतिबिम्ब को ग्रहण नही कर सकता अथवा वस्तु का सांनिध्य होने पर भी प्रकाश के अभाव से दर्पण में स्थिति प्रतिबिम्ब जैसे प्रतिबिम्बरूप में नहीं भासता, उसी प्रकार पराशक्ति भी प्रकाशस्वरूप परम शिव के सांनिध्य के बिना अपने अन्तःस्थित विश्वप्रपञ्च को प्रकटित करने में समर्थ नहीं होती। इसी कारण शुद्ध शिव अथवा शुद्ध शक्ति परस्पर सम्बन्धरहित होकर अकेले जगत् के निर्माण का कार्य नहीं कर सकते। दोनों की अपेक्षित सहकारिता के बिना सृष्टिकार्य असम्भव है।

सारे तत्त्व इन दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध से ही उद्भूत होते हैं। इससे कोई यह न समझे कि शिव और शक्ति अथवा प्रकाश और विमर्श परस्पर विभिन्न और स्वतन्त्र पदार्थ हैं।

शास्त्र का यही अन्तिम सिद्धान्त है। तथापि संहारकार्य में शिव का और सृष्टिकार्य में शक्ति का प्राधान्य स्वीकार करना होगा। पराशक्ति स्वतन्त्र होने के कारण परावाक्–प्रभृति क्रम का अवलम्बन कर विश्वसृष्टि का कार्यसम्पादन करती है और सृष्ट विश्व के केन्द्रस्थान में अवस्थित होकर उसका नियमन करती है। यही स्वातन्त्र्य उपर्युक्त रीति से क्रमशः इच्छा, ज्ञान और क्रिया का आकार प्राप्तकर वैचित्र्य का आविर्भाव करता है और विश्वरूप धारण करता है। शिव तटस्थ और उदासीन रहकर निरपेक्ष साक्षिरूप में आत्मशक्ति की यह लीला देखा करते हैं। यह नाना तत्त्वमय विश्वसृष्टि ही पराशक्ति का स्फुरण है। अतएव शक्तिकी एक अव्यक्त वा प्रलीन अवस्था है, जहाँ शक्ति शिव के साथ एकाकार होकर शिवरूप में ही विराजमान रहती है तथा उसकी एक अभिव्यक्त अवस्था भी है, जिसमें उसके द्वारा तत्त्वमय विश्व या देवताचक्र एक साथ ही एवं क्रमशः आविर्भूत होते हैं। पराशक्ति अपने स्फुरण का दर्शन और विश्व का आविर्भाव एक ही बात है; क्योंकि इस आदिम भूमि में दृष्टि और सृष्टि समानार्थक हैं, परन्तु इस क्रमिक आविर्भाव की एक प्रणाली है।

महाशक्ति और शिव

सृष्टि के आदि में अनादिकाल से जो अव्यक्त, पूर्ण, निराकार और शून्यस्वरूप वस्तु विराजमान है, वह तत्त्वातीत, प्रपञ्चातीत तथा व्यवहार–पथ के भी अतीत है। वही शाक्तों की महाशक्ति हैं और शैवों के परम शिव हैं। वाणी और मन के अगोचर होने के कारण ही इसे अनुत्तर कहा जाता है। वस्तुतः इसका वर्णन न तो कोई कभी कर सका है और न आगे कर सकने की ही सम्भावना है। इसे विशुद्ध प्रकाशन कहें तो अन्तर्लीन विमर्श के कारण यह प्रकाशमान है। अतएव इसमें स्वयंप्रकाशभाव है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार इसे विशुद्ध विमर्श भी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि प्रकाशहीन विमर्श असत्कल्प है। इस तत्त्वातीत और अनुत्तर अवस्था के लिये शास्त्र में वाचकरूप में आदिवर्ण 'अ'कारका प्रयोग होता है। इसके बाद दोनों की सामरस्य अवस्था है, 'अ' काररूप प्रकाश के साथ 'ह' काररूप विमर्श का अर्थात् अग्नि के साथ सोम का साम्यभाव ही 'काम' अथवा 'रवि' नाम से प्रसिद्ध है। शास्त्र में जिस अग्नीषोमात्मक बिन्दु का उल्लेख पाया जाता है, वह भी यही है। शिव ही 'अ' और शक्ति ही 'ह' है– बिन्दुरूप

में यही 'अहं' अथवा पूर्णाहंता है। साम्यभङ्ग होने पर यह बिन्दु प्रस्पन्दित होकर शुक्ल और रक्त बिन्दुरूप में आविर्भूत होता है। इस प्रस्पन्दन कार्य से जो अभिव्यक्त होता है उसे ही शास्त्र में संवित् अथवा चैतन्य के नाम से वर्णित किया जाता है। इसी का दूसरा नाम चित्कला है। अग्नि के सम्पर्क से घृत जिस प्रकार गलकर धारारूप में बहने लगता है, उसी प्रकार प्रकाशात्मक शिव के सम्पर्क से विमर्शरूपा पराशक्ति द्रुत होती है तथा उससे एक परमानन्दमय अमृत की धारा का स्राव होता है। यही धारा एक प्रकार से उपर्युक्त चित्कला एवं दूसरे प्रकार से ब्रह्मानन्द का स्वरूप है। निष्कल चैतन्य में कला का आरोप सम्भवनीय नहीं है। अतएव यह चित्कला महाशक्ति के स्वातन्त्र्य के उन्मेष के कारण शिव–शक्ति के आपेक्षिक वैषम्य से उत्पन्न शक्तिभाव के प्राधान्य से प्रकाशांश और विमर्शांश के घनीभूत संश्लेषण से उद्भूत होती है। शुद्ध प्रकाश किंवा शुद्ध विमर्श बिन्दुपदवाच्य नहीं है। जिस विमर्शशक्ति में निखिल प्रपञ्च विलीन रहता है, उसके संसर्ग से अनुत्तर अक्षरस्वरूप प्रकाश बिन्दुरूप धारण करता है। यह संसर्ग विमर्शशक्ति में प्रकाश के अनुप्रवेश के सिवा और कुछ नहीं है। इस बिन्दु का नामान्तर प्रकाशबिन्दु है, जो विमर्शशक्ति के गर्भ में स्थित रहता है। इसके पश्चात् विमर्शशक्ति के प्रकाशबिन्दु में अनुप्रविष्ट होने पर यह बिन्दु उच्छून हो जाता है अर्थात् पुष्टिलाभ करता है, तब उससे तेजोमय बीजस्वरूप नाद निर्गत होता है। इस नाद में समस्त तत्त्व सूक्ष्मरूप से निहित रहते हैं। नाद निर्गत होकर त्रिकोणाकार रूप धारण करता है। यही 'अहम्' नामक बिन्दुनादात्मक प्रकाश–विमर्श का शरीर है। इसमें प्रकाश शुक्लबिन्दु है और विमर्श रक्तबिन्दु तथा दोनों का पारस्परिक अनुप्रवेशात्मक साम्य मिश्रबिन्दु है। इसी साम्य का दूसरा नाम परमात्मा है। इसी को 'रवि' या 'काम' के नाम से पुकारते हैं, यह बात पहले ही कही जा चुकी है। अग्नि और सोम इसी काम के कला–विशेष हैं। अतएव कामकला कहने से तीनों बिन्दुओं का बोध होता है। इन तीन बिन्दुओं का समष्टिभूत महात्रिकोण ही दिव्याक्षरस्वरूपा आद्याशक्ति का अपना रूप है। इसके मध्य में रविबिन्दु देवी के मुखरूप में, अग्नि और सोमबिन्दु स्तनद्वयरूप में तथा 'ह' कारकी अर्धकला अथवा हार्धकला योनिरूप में कल्पित होती है। यह हार्धकला अत्यन्त रहस्यमय गुह्य तत्त्व है, इसका विशेष विवरण इस निबन्ध में देना अनावश्यक है, तथापि सम्प्रति जिज्ञासु साधक की तृप्ति के लिये इतना कहा जा सकता है कि शिव–शक्ति के मिलने से उत्पन्न अमृत की धारा प्रवाहित होने पर उससे जिस लीलारूप तरङ्ग की उत्पत्ति होती है वही तान्त्रिक परिभाषा में हार्धकला के नाम से विख्यात है। यह जो त्रिकोण के

विषय में कहा गया है, वह पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी– इन त्रिविध शब्दों का परस्पर संश्लेषात्मक सम्मिलित स्वरूप है और इसका केन्द्रस्थित बिन्दु, जिसका स्वरूप अहंरूप में वर्णित हुआ है, वह परमातृका का विलासक्षेप सदाशिवतत्त्वका स्वरूप है। मध्यबिन्दु तथा मूल त्रिकोण से समस्त तत्त्वों और पदार्थों की उत्पत्ति होती है। चाहे किसी भी देवता या किसी भी स्तर के मूलतत्त्व का अनुसंधान करो, उसकी चरमावस्था में यह लिङ्गयोनि का समन्वयरूप त्रिकोणमध्यस्थ बिन्दु अथवा बिन्दुगर्भित त्रिकोण दिखलायी देगा। इसी कारण तन्त्रशास्त्र में जिस–किसी भी देवता के चक्र का वर्णन आया है, उसमें सर्वत्र ही यह बिन्दु और त्रिकोण मूलस्थान में साधारणभाव से वर्तमान है। चतुरस्रप्रभृति पीठ का वर्णन होने पर भी अन्तर्दृष्टि से देखने पर उनके भी मूल में त्रिकोण की सत्ता अवस्थित देखी जाती है। त्रिकोण के विभिन्न स्पन्दन से वासना की विचित्रता तथा तदनुरूप चक्र की भिन्न–भिन्न अवस्थाएँ निष्पन्न होती हैं। वर्तमान प्रबन्ध में उसकी आलोचना प्रासङ्गिक न होगी।

महाबिन्दु अनन्त कला की समष्टि होने पर भी तत्तद्ब्रह्माण्ड के अभिव्यक्त उपादान की मात्रा के अनुसार निर्दिष्टसंख्यक कलाद्वारा गठित होकर अव्यक्त–गर्भ से अहंरूप में आविर्भूत होता है। यह दर्शनशास्त्र का एक गम्भीरतम रहस्य है। वेदान्तादि निखिल शास्त्र निष्कल अव्यक्त सत्ता किस प्रकार से 'अहम्' रूप में आत्मप्रकाश करती है, इसे अनादिसिद्ध स्वीकार करते हैं। किन्तु इस 'अहम्' की उत्पत्तिप्रणाली और तिरोभावप्रणाली योगसम्पत्तिसम्पन्न तान्त्रिक द्रष्टा के सिवा अन्य किसी साधक को अपरोक्षभाव से अनुभूत नहीं होती। व्यष्टि, समष्टि एवं महासमष्टि– सर्वत्र एक ही प्रणाली की क्रिया देखने में आती है। कला की निरन्तर और क्रमिक पूर्णता से एक ओर जिस प्रकार बिन्दुरूप पूर्णकला अथवा अहंतत्त्व का विकास होता है, उसी प्रकार उसके निरन्तर और क्रमिक क्षय से क्रमशः शून्यस्वरूप अहंभाववर्जित आत्मभाव का आविर्भाव होता है। दोनों में ही पूर्णकला की एक कला नित्य साक्षी रूप में प्रपञ्च के लय होने के बाद भी जाग्रत रहती है। यही एक कला निर्वाणकलारूप में जीव की उन्मनी अवस्था में रहती है। इसकी भी निवृत्ति हो जाने पर जिस निष्कल अवस्था का विकास होता है, वही शिव–शक्ति–तत्त्व है, वही महाबिन्दु है, अतएव यह शिवत्व सदाशिव का नाममात्र है। ब्रह्माण्ड की चरमावस्था जिस प्रकार अस्मिता में पर्यवसित होती है, जो प्रकृति और पुरुष का अवलम्बन करके आत्मलाभ करती है, उसी प्रकार समस्त विश्व के पर्यवसान में इस विराट् अस्मिरूप अर्थात् बिन्दु स्वरूप सदाशिवतत्त्व का

आविर्भाव होता है, जिसमें अधिष्ठित होकर शिव–शक्तिरूप मूल वस्तु लीलामय भाव में आत्मप्रकाश करती है। अतएव बिन्दुरूप अहंकार के आत्मसमर्पण के बिना महाबिन्दु या पूर्णाहंता के स्वरूप की उपलब्धि सम्भवनीय नहीं है। इस उपलब्धि में पञ्चदशकलात्मक संसारी जीव एवं षोडश अथवा निर्वाणकलात्मक मुक्त जीव–किसी की सत्ता नहीं रहती। यह जीवभावविनिर्मुक्त शिवभाव है, यह पहले ही कहा जा चुका है। पाशजाल से मुक्त होकर जीव जगत् जबतक शिवरूप में प्रकाशित नहीं होता तबतक पूर्णस्वरूपा महाशक्ति का यथार्थ संधान पाना बहुत ही कठिन है। शिवभाव प्राप्त होने पर भी शवरूप में परिणत हो शवासनपरिग्रह न कर सकने पर अपने भीतर महाशक्ति का उन्मेष नहीं प्राप्त हो सकता।

स्थूल जगत्, जिसे हम सर्वदा अनुभव करते हैं, दीपकलिका से विकीर्ण प्रभामण्डल की भाँति एक बिन्दु का बाह्य प्रसारण अथवा विकिरणमात्र है। इन्द्रियों के प्रत्याहारसे इस रश्मिमाला को उपसंहृत कर सकनेपर बाह्य जगत् स्वभावत: बाह्य बिन्दु में विलीन हो जाता है। इसी प्रकार लिङ्गात्मक आभ्यन्तरिक जगत् भी विक्षुब्ध अन्त:करण का बाह्य विलासमात्र है तथा वह भी विलीन होने पर तदनुरूप बिन्दुस्वरूप में अव्यक्त हो जाता है। इसी प्रकार कारणजगत् उपसंहार को प्राप्त होकर कारण बिन्दु में पर्यवसित होता है। ये तीनों जगत् जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था के द्योतक हैं। अतएव स्थूल, सूक्ष्म और कारण–ये तीनों बिन्दु ही त्रिकोण के तीन प्रान्तों के तीन बिन्दु हैं। इन्हें 'अकार', 'उकार' और 'मकार' के नाम से भी सांकेतिक भाषा में निर्देश किया जा सकता है। अन्तर्मुख–प्रेरणा से जब ये तीनों बिन्दु रेखारूप में भीतर की ओर प्रवाहित होकर एक महाबिन्दुरूप में पर्यवसान को प्राप्त होते हैं, तो वे ही तुरीयबिन्दु अथवा महाकारणरूप में अभिहित होने के योग्य होते हैं। वही त्रिकोण का अन्त:स्थित मध्यबिन्दु है, जिसके विषय में पहले कहा जा चुका है। इस बिन्दु में अनादिकाल से दिव्य मिथुन शिव–शक्ति का अथवा परमपुरुष और पराप्रकृति के शृङ्गारादि अनन्त भावों का विलास चलता रहता है। राधाकृष्ण की युगल–मिलन आदि बुद्ध एवं प्रज्ञापारमिता का युगलद्वन्द्वस्वरूप, God the Father तथा God the son का Holy Ghost के अभ्यन्तर पारस्परिक सम्मिलन, इसी का द्योतन करते हैं। यह त्रिकोण ही प्रणव का स्वरूप है। सार्धत्रिवलयाकारा भुजङ्गविग्रहा सुषुप्ता कुण्डलिनी शक्ति भी इसी का नामान्तर है। कुण्डलिनी का प्रबुद्ध भाव सम्यक्‌रूप से सिद्ध होने पर शिव–शक्ति का भेद विगलित हो जाता है तथा साथ–ही–साथ जीव के साथ शिव का अथवा शक्ति का पार्थक्य

तिरोहित हो जाता है, तब चक्र या यन्त्र अव्यक्तगर्भ में विलीन हो जाता है। बिन्दु एवं त्रिकोण का भेद दूर होने के कारण बिन्दु का बिन्दुत्व तथा त्रिकोण का त्रिकोणत्व कुछ भी अवशिष्ट नहीं रहता। जो रहता है उसका किसी नाम–रूप द्वारा निर्देश नहीं होता। यह सब तत्त्वों का मूलकारण होने पर भी किसी विशिष्ट तत्त्व के रूप में अभिहित होने के योग्य नहीं रहता। वह चित्, अचित् और ईश्वर का अनादिभूत आदिकारण होने पर भी चित्त, अचित् या ईश्वर–किसी भी नाम से वर्णित नहीं हो सकता।

शक्ति–साधना का मूलसूत्र नादानुसंधान अथवा शब्द का क्रमिक उच्चारण है। बिन्दु या कुण्डलिनी विक्षुब्ध होकर नाद का विकास करती है। पूर्ण परमेश्वरी की स्वातन्त्र्य शक्ति से बिन्दु का विक्षोभकार्य सम्पन्न होता है। इसी का दूसरा नाम गुरुकृपा या परमेश्वर का अनुग्रह है। इस चिदाकाशस्वरूप बिन्दु को दूसरी कोई निम्नभूमिस्थ शक्ति विक्षुब्ध नहीं कर सकती। कुण्डलिनी जब मूलाधार के नीचे ऊर्ध्वमुख सहस्रार अथवा अकुलकमल में विराजमान रहती है तब वह अव्यक्त नाम से विश्वोत्तीर्ण अवस्था के अन्तर्गत रहती है; परन्तु स्वातन्त्र्यवश उसकी अभिव्यक्ति होने पर मूलाधार में ही उसकी अनुभूति होती है। निराधार निरालम्ब सत्ता से, यहीं से आधारभाव की सूचना होती है। क्रमश: इस शक्ति के उद्‌बोधन की मात्रा के अनुसार आधारभाव पुन: क्षीण हो जाता है एवं परिशेष में सर्वतोभावेन तिरोहित होकर ऊर्ध्वस्थ अधोमुख सहस्रदल कमल में पुन: अकुल में ही उसका लय होता है, मध्यस्थ व्यापार केवल पूर्ण चैतन्य सम्पत्ति की प्राप्ति के लिये हैं। जो अनन्त गर्भ में अचेतनभाव से अनादिकाल से सुषुप्तावस्था में था, वह पूर्णरूप से प्रबुद्ध होकर चैतन्यस्वरूप के अवलम्बनपूर्वक पुन: उस अनन्त गर्भ में प्रविष्ट हो जाता है। यह एक अकुल से दूसरे अकुलपर्यन्त जो मार्ग है वही विश्व–जगत् का मूलीभूत चक्र है। वृत्ताकार मार्ग में मनुष्य जिस स्थान से चलता है, निरन्तर सरलतापूर्वक आगे बढ़ता जाय तो वह पुन: उसी स्थान पर लौट आता है। यही मध्यका– आवरण चक्र का स्वरूप है। इस प्रकार के चक्र कितने हैं इसका संख्या द्वारा निर्णय नहीं किया जा सकता, तथापि साधकजन अपने–अपने प्रयोजन और उद्देश्य के अनुसार उनका कुछ निर्देश कर गये हैं। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, लम्बिकाग्र और आज्ञा– ये सब अज्ञानराज्य के अन्तर्गत हैं। यद्यपि अधोवर्ती चक्र की अपेक्षा ऊर्ध्ववर्ती चक्र में शक्ति की सूक्ष्मता तथा निर्मलता का विकास अधिक है तथापि वे अज्ञान की सीमा के अन्तर्गत हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।

ज्ञान के संचार के साथ–साथ ही आज्ञाचक्र का भेदन हो जाता है, अथवा दूसरे प्रकार से यह कह सकते हैं कि आज्ञाचक्र का भेदन करने से ज्ञान का उदय होता है। आज्ञाचक्र के बाद ही बिन्दुस्थान है, यही बिन्दु योगियों का तृतीय नेत्र अथवा ज्ञानचक्षु कहलाता है। इसी बिन्दु से ज्ञान भूमि की सूचना मिलती है। चित्त को एकाग्र करके उपसंहृत किये बिना अर्थात् विक्षिप्त अवस्था में बिन्दु में स्थिति नहीं हो सकती। बिन्दु अवस्था में स्थिति होने पर भी यथार्थ लक्ष्य की प्राप्ति में अनेकों व्यवधान रह जाते हैं। यद्यपि बिन्दुभूमि में साधक अहंभाव में प्रतिष्ठित होकर अपेक्षित द्रष्टा बनकर निम्नवर्ती समस्त प्रपञ्च को निरपेक्षभाव से देखने में समर्थ होता है, तथापि जबतक वह बिन्दु पूर्णतया तिरोहित नहीं हो जाता, अर्थात् पूर्णतया अहंभाव का विसर्जन अथवा आत्मसमर्पण नहीं होता, तबतक महाबिन्दु अथवा शिवभाव की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। इसीलिये बिन्दुभाव को प्राप्त होकर साधक को क्रमश: कलाक्षय करते–करते पूर्णतया विगतकल अवस्था में उपनीत होना पड़ता है।

बिन्दु के बाद उल्लेखयोग्य प्रधान चक्र बिन्दु–अर्ध अथवा अर्धचन्द्र के नाम से प्रसिद्ध है। बिन्दु को चन्द्रबिन्दु कहा जाता है, इसीलिये यह अवस्था अर्धचन्द्र नाम से वर्णित होती है। इसी अवस्था में अष्टकला शक्ति का विकास होता है। इसके आगे अर्थात् शक्ति की नव कला के क्षीण होने पर एक अवरोधमय घोर आवरणस्वरूप विलक्षण अवस्था का उदय होता है। बड़े–बड़े देवताओं के लिये भी इस स्तर का भेदन करके ऊपर उठना कठिन है, परन्तु अनुग्रह–शक्ति के विशिष्ट प्रभाव से भाग्यवान् साधक इस चक्र का भेदन कर ऊपर उठने में समर्थ होता है। शास्त्र में यह अवस्था 'रोधिनी' नाम से प्रसिद्ध है। इस आवरण का भेदन करने से ही साधक नादभूमि में उपनीत होता है। नाद चैतन्य का अभिव्यञ्जक है, अत: इस अवस्था में चिच्छक्ति क्रमश: अधिकतर स्पष्ट हो जाती है। ब्रह्मरन्ध्र के जिस स्थान में नाद का लय होता है, यह वही स्थान है। इसके बाद साक्षात् चिच्छक्ति का आविर्भाव होता है। इसी शक्ति से समस्त भुवन विवृत हो रहे हैं।

इस अवस्था के आगे त्रिकोणस्वरूपा 'व्यापिका' है, वह बिन्दु के विलासस्वरूप वामादि शक्तित्रय से संघटित है। तदनन्तर सर्वकारणभूता समनाशक्ति का आविर्भाव होता है। यह शिवाधिष्ठित है और समस्त ब्रह्माण्डों की भरणशीला है। एतदारूढ़ शिव ही परम कारण और पञ्च कृत्यकारी हैं। यह चिदानन्दरूपा पराशक्ति है, यहीं मनोराज्य का अन्त होता है। इसके आगे मन,

काल, देश, तत्त्व, देवता तथा कार्य कारणभाव सभी सदा के लिये तिरोहित हो जाते हैं। जो जपादि क्रिया के द्वारा नाद के उत्थान का अभ्यास करते हैं वे जानते हैं कि आज्ञाचक्रपर्यन्त अर्थात् जहाँ तक अक्षमाला या वर्णमाला का आवर्तन होता है, वहाँ तक उच्चारण अथवा ऊर्ध्वचालन का काल एक मात्रा से न्यून नहीं हो सकता। बिन्दु में वह अर्धमात्रा में पर्यवसित होता है। इसके बाद वह क्रमशः क्षीण होने–होते समनाभूमि में एक क्षण के रूप में परिणत होता है। इसके आगे मन के स्पन्दशून्य हो जाने के कारण देश, काल नहीं रह जाते तथा समस्त मानसिक विक्षोभ या कल्पनाजाल के उपशान्त होने पर निर्विकल्पक निवृत्तिभाव होने पर भी– देश, काल और निमित्त के अतीत तथा मनोभूमि के अगोचर होने पर भी– वस्तुतः नितान्त निष्कल अवस्था नहीं है, क्योंकि इस अवस्था में इसमें विशुद्ध चिद्रूपा एक कला शेष रहती है, जो निर्वाणकलारूप से शास्त्र में प्रसिद्ध है तथा योगिजन जिसे द्रष्टा या साक्षिचैतन्य के नाम से पुकारते हैं। सांख्य का कैवल्य इसी अवस्था की सूचना देता है, क्योंकि सांख्य की प्रकृति पञ्चदशकलात्मिका है और उसका पुरुष षोडशी या निर्वाणकला का स्वरूप है।

'पुरुषे षोडशकले तामाहुरमृतां कलाम्।'

इस कला से ऊपर उठे बिना महाबिन्दु या परमात्मस्वरूप शिवतत्त्व की उपलब्धि नहीं हो सकती। सांख्यभूमि से अग्रसर होने पर वेदान्त की साधना होती है– इस एक कलामात्रावशिष्ट निर्वाणभूमि या उन्मनाभूमि को पारकर महाबिन्दुरूप पूर्णाहंतामय अवस्था में पदार्पण करना भी वही है। पूर्णाहंतास्वरूप शिवभाव की स्फूर्ति होने पर जब इसका भी परिहार होता है– जब बिन्दु का क्रमशः क्षय होते–होते उन्मनी अवस्था अवसान होने पर बिन्दु शून्य हो जाता है, तब पूर्णस्वरूप महाशक्ति का आविर्भाव होता है, अर्थात् महाबिन्दु के पूर्णरूप में स्थित होने पर उसमें पराशक्ति की नित्य अभिव्यक्ति होती है। पक्षान्तर में महाबिन्दु के रिक्त हो जाने पर परम शिव का आविर्भाव होता है। वस्तुतः शिव–शक्ति के विभिन्न न होने के कारण तथा महाबिन्दु की पूर्ण ओर रिक्त अवस्था भी नित्य–सिद्ध होने के कारण शून्य और पूर्णत्व का आविर्भाव नित्य ही मानना होगा। जो रिक्त दिशा है, लौकिक दृष्टि से वही अमावस्या है और जो पूर्ण दशा है वही पूर्णिमा है। महाशक्ति के प्राधान्य को अङ्गीकार कर अमावस्या की ओर जो उसकी स्फूर्ति होती है वही कालीरूप में तथा जो पूर्णिमा की ओर स्फूर्ति होती है वही षोडशी, त्रिपुरसुन्दरी या श्रीविद्या के रूप से साधक–समाज में परिचित होती हैं। कालीकुल और श्रीकुल का यही गुप्त रहस्य है।

मध्यपथ में तारा या तारिणी विद्या है। यहाँ उसकी आलोचना नहीं करनी है। हमने जो कुछ कहा है वह महाशक्ति का प्राधान्य अङ्गीकार करके ही कहा है, परन्तु प्रकाश या शिवस्वरूप का प्राधान्य अङ्गीकार करने पर इस अवस्था में कुछ भी कहने को नहीं रह जाता।

सकल, निष्कल और मिश्र—शक्ति की ये तीन अवस्थाएँ हैं, अत: शक्ति की उपासना भी स्वभावत: इन तीन श्रेणियों में ही अन्तर्मुक्त हो जाती है। उपासना के क्रम से स-कल भावकी उपासना निकृष्ट है, मिश्रभाव की उपासना मध्यम है एवं निष्कल उपासना ही श्रेष्ठ है, परंतु हमलोग जिसे साधारणतया उपासना कहते हैं वह इन तीन श्रेणियों में से किसी के अन्तर्गत नहीं है, क्योंकि जबतक गुरु की कपादृष्टि से कुण्डलिनी शक्ति का उद्‌बोधन तथा सुषुम्ना के मार्ग में प्रवेश नहीं हो जाता तबतक उपासना का अधिकार नहीं उत्पन्न होता। मूलाधारसे आज्ञाचक्रपर्यन्त चक्रेश्वरीरूप में शक्ति की आराधना ही निकृष्ट उपासना है, परंतु जो साधक इन्द्रिय और प्राण की गति का अवरोध कर कुलपथ में प्रविष्ट नहीं हो सकता, उसके लिये देवी की अधम उपासना भी सम्भव नहीं है। साधक क्रमश: अधमभूमि से यथाविधि साधना द्वारा निर्मलचित्त होकर मध्यम भूमि की उपासना का अधिकारी होता है। तदनन्तर उत्तम अधिकार प्राप्तकर भगवती की अद्वैत उपासना से सिद्धिलाभ करता है। मनुष्य जबतक द्वन्द्वमय भेदराज्य में वर्तमान रहता है, तबतक उसके लिये निम्नभूमि की उपासना ही स्वाभाविक है। कर्म ही इसका रूप है। चतुरस्र से बैन्दवचक्रपर्यन्त अथवा मूलाधार से सहस्त्रदलकमलपर्यन्त सदल आवरण देवतादिसहित समग्र देवीचक्र की उपासना ही कर्मात्मक अपरा पूजा है। इस पूजा अर्थात् षट्‌चक्र के क्रियारूप अनुष्ठान का अवलम्बन कर अग्रसर न हो सकने से चित्त में कदपि अभेदज्ञान का उदय नहीं हो सकतां स्वयं शंकर भी भगवती की अपरा पूजा किया करते थे। यह महाजनों का सिद्धान्त है। इसीलिये ज्ञानी के लिये भी चक्रपूजा उपेक्षणीय नहीं है। साधक अपनी देह में विभिन्न प्रकार के गणेश, ग्रह, नक्षत्र, राशि, योगिनी एवं पीठ का विधिपूर्वक न्यास वा स्थापन कर सकने पर केवल इसी के प्रभाव से साक्षात् परमेश्वरतुल्य अवस्था प्राप्त कर सकते है।

निम्नभूमि की उपासना के प्रभाव से साधक का अधिकारबल बढ़ जाने पर वह मध्यम भूमि में उपनीत होकर भेदाभेद अवस्था को उपलब्ध करता है। तब समुचित ज्ञान और कर्म का आविर्भाव होता है और आन्तर अद्वैतधाम में क्रमश: बाह्य चक्रादि का लय हो जाता है। इसके बाद जब ज्ञान में कर्म की परिसमाप्ति हो जाती है तब अभेद या अद्वैतभूमि की स्फूर्ति होती है

और साधक परापूजा का नित्य–अधिकार स्वभावत: ही प्राप्त कर लेता है। एकमात्र परमशिव की स्फूर्ति या ब्रह्मज्ञान ही परापूजा का नामान्तर है। इस ज्ञान अथवा परमतत्त्व के विकास को लौकिक जगत् में कोई समझ नहीं सकता।

अधोमुख श्वेतवर्ण सहस्रदलकमल या अकुल कमल की अन्त:कलिका में वाग्भव नामक एक प्रसिद्ध त्रिकोण है। इस त्रिकोण से परादिक्रम से चार प्रकार के वाक् या शब्द उत्पन्न होने के कारण इसका नाम वाग्भव है। इस त्रिकोण के मध्य में विश्वगुरु परम शिव की पादुका है। वह प्रकाश, विमर्श तथा इन दोनों के सामरस्यभेद से तीन प्रकार की है। इस पादुका से निरन्तर परमामृत निकलता रहता है– इस स्निग्ध अमृतमय चन्द्ररश्मिद्वारा समस्त विश्व का संजीवन, माधुर्यसम्पादन और तृप्ति होती है। यह पादुका समस्त जीवों का आत्मस्वरूप है। इसके बाद शिवाद्वैतभावनारूप प्रसाद को ग्रहण करने से समस्त तत्त्व विशुद्ध होकर विमल आनन्द का उदय होता है। तत्त्व–शुद्धि और आनन्दसंचार के पश्चात् हृदयाकाश में जिस परम नाद का उदय होता है, उसका चिन्तन करने पर आद्याशक्ति के आनन्दमय स्वरूप की उपलब्धि होती है। साधक के हृदय में इस प्रकार के नाद की अभिव्यक्ति ही आन्तर जप या मानस जप के नाम से प्रसिद्ध है। चित्त के बाह्य प्रदेश से लौटकर अन्तर्मुख में एकाग्र होने पर इसका अनुभव होता है। इससे अश्रु, पुलक, स्वेद, कम्प प्रभृति सात्त्विक विकारों का उन्मेष होता है। इस आन्तर जप या नादानुसंधान के समय इन्द्रियसंचार नहीं रहता, इसीलिये इसे बाह्य जप नहीं कहा जा सकता। बाह्य जप विकल्प का ही प्रकार भेद है, परन्तु आन्तर जप में विकल्प का व्यापार शून्य हो जाता है। यही निष्कल चिन्तन अथवा ध्यान का स्वरूप है। वस्तुत: यह चित्त की निरन्तर अन्तर्मुखता के सिवा और कुछ भी नहीं है। इस प्रकार का चिन्तन तबतक उदित नहीं होता जबतक शुद्ध चैतन्य का संकोचभाव दूर नहीं हो जाता। पर चित्कला महाशक्ति का उल्लास होने पर स्वत: ही इस संकोच का नाश हो जाता है। तब पूर्णाहंता स्वयमेव विकसित हो जाती है। इन्द्रियों को तृप्त करने वाले शब्द, स्पर्श प्रभृति के द्वारा आत्मदेवता की जो पूजा होती है, उसे स्वाभाविक पूजा अथवा सहज उपासना कहकर महायज्ञरूप से शास्त्र में उसकी प्रशंसा की गयी है। विषयानुभवजन्य आनन्द महानन्द के साथ मिलने पर जिस वैषम्यहीन अवस्था का उदय होता है, वही भगवती की उत्तम उपासना का प्रकृत तत्त्व है।

हमने अत्यन्त संक्षेप में शक्ति–साधना के साधारण तत्त्व के सम्बन्ध में कुछ निवेदन किया

है। द्वैत, द्वैताद्वैत, अद्वैत– ये त्रिविध उपासनाएँ शक्ति–साधना के ही अन्तर्गत है। अतः समस्त देवताओं की साधना तथा योग, कर्म प्रभृति सब इसके अन्तर्गत हैं। काली, ताराप्रभृति–भेद से साधना के प्रकारभेद अप्रासङ्गिक समझकर यहाँ आलोचित नहीं हुए है। बीजतत्त्व और मन्त्रविज्ञान, नादबिन्दुकला का स्वरूपालोचन, मन्त्रोद्धार और मन्त्रचैतन्य प्रभृति क्रियाएँ, दीक्षा और गुरुतत्त्व, दीक्षातत्त्व, अध्वशुद्धि, भूत और चित्त की शोधनक्रिया, मातृका और पीठविचार, न्यास और प्राणप्रतिष्ठा– इस प्रकार अनेकों विषय शाक्त–साधना की विस्तृत आलोचनासूची के अन्तर्गत हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि शक्ति–उपासना के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिये इन सब प्रासङ्गिक विषयों का भी ज्ञान होना आवश्यक है। (कल्याण के शक्ति अङ्क से साभार)

श्रीविद्या-साधना-सरणि

कविराज पं० श्रीसीताराम शास्त्री
(श्रीविद्या-भास्कर)

साध शाक्तमजीजनत्– इस वेद-वाक्य के अनुसार समस्त विश्व ही शक्ति से उत्पन्न है। शक्ति के द्वारा ही अनन्त ब्रह्माण्डों का पालन, पोषण और संहारादि होता है। ब्रह्मा, शंकर, विष्णु, अग्नि, सूर्य, वरुण आदि देव भी उसी शक्ति से सम्पन्न होकर स्वकार्य करने में सक्षम होते हैं। प्रत्यक्ष रूप से सब कार्यों की कारणरूपा भगवती है–

शक्तिः करोति ब्रह्माण्डं सा वै पालयतेऽखिलम्।
इच्छया संहरत्येषा जगदेतच्चराचरम् ।।
न विष्णुर्न हरः शक्रो न ब्रह्मा न च पावकः ।
न सूर्यो वरुणः स्वे स्वे कार्ये कथञ्चन ।।
तया युक्ता हि कुर्वन्ति स्वानि कार्याणि ते सुराः।
कारणं सैव कार्येषु प्रत्यक्षेणावगम्यते ।।

–(देवीभागवत)

अतः समस्त साधनाओं का मूलभूत शक्ति उपासना का क्रम आदिकाल से चला आ रहा है। स्वर्गादिनिवासी देवगण एवं ब्रह्मविद्वरिष्ठ ऋषि–महर्षियों ने भी शक्ति उपासना के बल से अनेक लोक–कल्याणकारी विलक्षण कार्य किये है। निगम–आगम, स्मृति–पुराण आदि भारतीय संस्कृतवाङ्मय में शक्ति–उपासना की विविध विद्याएँ प्रचुर रूप से उपलब्ध हैं। इनमें सर्वश्रेष्ठ स्थान है श्रीविद्या–साधना का। भारतवर्ष की यह परम रहस्यमयी सर्वोत्कृष्ट साधना प्रणाली मानी जाती है। ज्ञान, भक्ति, योग, कर्म आदि समस्त साधना प्रणालियों का समुच्चय ही श्रीविद्या है। ईश्वर के निःश्वासभूत होने से वेदों की प्रामाणिकता है, तो शिवप्रोक्त होने से आगमशास्त्र–'तन्त्र' की भी प्रामाणिकता है। अतः सूत्ररूप से वेदों में एवं विशद रूप से तन्त्रशास्त्रों में श्रीविद्या साधना के क्रम का विवेन है। शिवप्रोक्त चौंसठ वाममार्गीय तन्त्रों में ऐहिक सिद्धियों की प्राप्ति के लिये विविध साधनाओं का वर्णन है। श्रीविद्या धर्म, अर्थ, काम इन तीन पुरुषार्थो सहित परम पुरुषार्थ मोक्ष को भी देने वाली है।

श्रीविद्या का स्वरूप

सांसारिक सकल कामनाओं के साधक चतु:षष्टितन्त्रों का प्रतिपादन कर देने के बाद पराम्बा भगवती पार्वती ने भूतभावन विश्वनाथ से पूछा– 'भगवन्! इन तन्त्रों की साधना से जीव के आधि–व्याधि, शोक–संताप, दीनता–हीनता आदि क्लेश तो दूर हो जायेंगे, किन्तु गर्भवास और मरण के असह्य दु:खों की निवृत्ति तो इनसे नहीं होगी। कृपा करके इस दु:ख की निवृत्ति या मोक्ष रूप परमपद की प्राप्ति का भी कोई उपाय बताइये।' परम कल्याणमयी पुत्रवत्सला पराम्बा के साग्रह अनुरोध पर भगवान् शंकर ने इस श्रीविद्यासाधना प्रणाली का प्राकट्य किया। इसी प्रसंग को आचार्य शंकर भगवत्पाद 'सौन्दर्य लहरी' में इन शब्दों में प्रकट करते हैं–

चतु:षष्ट्या तन्त्रैः सकलमतिसंधाय भुवनं, स्थितस्तत्तत्सिद्धिप्रसवपरतन्त्रैः पशुपतिः।
पुनस्त्वन्निर्बन्धादखिलपुरुषार्थैकघटनास्वतन्त्रं ते तन्त्रं क्षितितलमवातीतरदिदम्।।

'पशुपति भगवान् शंकर वाममार्ग के चौंसठ तन्त्रों के द्वारा साधकों की जो–जो स्वाभिमत सिद्धि है, उन सबका वर्णन कर शान्त हो गये। फिर भी भगवती! आपके निर्बन्ध अर्थात् आग्रहपर उन्होंने सकल पुरुषार्थो अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को प्रदान करने वाले इन श्रीविद्यासाधना तन्त्र का प्राकट्य किया।'

श्रीमत्शंकराचार्य 'सौदर्न्य लहरी' में मन्त्र, यन्त्र आदि साधना–प्रणाली का वर्णन करते हुए इस श्रीविद्यासाधना की फलश्रुति लिखते हैं–

सरस्वत्या लक्ष्म्या विधिहरिसपत्नो विहरते
रतेः पातिव्रत्यं शिथिलयति रम्येण वपुषा।
चिरं जीवन्नेव क्षपितपशुपाव्यतिकरः
परानन्दाभिख्यं रसयति रसं त्वद्भजनवान्।।

– (सौन्दर्यलहरी १०१)

'देवि ललिते! आपका भजन करने वाला साधक विद्याओं के ज्ञान से विद्यापतित्व एवं धनाढ्यता से लक्ष्मीपतित्व को प्राप्त कर ब्रह्मा एवं विष्णु के लिये 'सपत्न' अर्थात् अपरति–प्रयुक्त असूया का जनक हो जाता है। वह अपने सौन्दर्यशाली शरीर से रतिपति काम को भी तिरस्कृत करता है एवं चिरंजीवी होकर पशु–पाशों से मुक्त जीवन्मुक्त अवस्था को प्राप्त होकर 'परानन्द'

नामक रस का पान करता है।'

आचार्य शंकर भगवत्पादने सौन्दर्यलहरी में स्तुतिव्याज से श्रीविद्यासाधना का सार सर्वस्व बता दिया है और श्रीविद्या के पञ्चदशाक्षरी मन्त्र के एक–एक अक्षर पर बीस नामों वाले ब्रह्माण्डपुराणोक्त 'ललिता–त्रिशती' स्तोत्र पर भाष्य लिखकर अपने चारों मठों में श्रीयन्त्र द्वारा श्रीविद्यासाधना का परिष्कृत क्रम प्रारम्भ कर दिया है। जन्म–जन्मान्तरी पुण्यपुञ्ज के उदय होने से यदि किसी को गुरुकृपा से इस साधना का क्रम प्राप्त हो जाय और वह सम्प्रदायपुरस्सर साधना करे तो कृतकृत्य हो जाता है, उसके समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं और वह जीवनमुक्त–अवस्था को प्राप्त हो जाता है। लोक में इस विद्या के सामान्य ज्ञानवाले कुछ साधक तो सुलभ हैं, पर विशेष ज्ञाता अतयन्त दुर्लभ हैं। कारण, यह अत्यन्त रहस्यमयी गुप्तविद्या है और शास्त्रों ने इसे सर्वथा गुप्त रखने का निर्देश किया है। ब्रह्माण्डपुराण में लिखा है–

राज्यं देयं शिरो देयं न देया षोडशाक्षरी।

राज्य दिया जा सकता है, सिर भी समर्पित किया जा सकता है परंतु श्रीविद्या का षोडशाक्षरी मन्त्र कभी नहीं दिया जा सकता।'

तब प्रश्न होगा कि फिर यह संसार को कैसे प्राप्त हुआ! तो 'नित्याषोडशिकार्णव' कहता है–

कर्णात् कर्णोपदेशेन सम्प्राप्तमवनीतले।

'यह विद्या कर्णपरम्परा से अर्थात् गुरुपरम्परा से भूतल पर आयी।' उपनिषद्–वक्यों का उपबृंहण करते हुए 'आत्मपुराण' में भी लिखा है–

ब्रह्मविद्यातिसंखिन्ना ब्राह्मिष्ठं ब्राह्मणं ययौ।
वाराङ्गनासमां मां हि मा कृथाः सर्वसेविताम्।।
गोपाय मां सदैव त्वं कुलजामिव योषिताम्।
शेवधिस्त्वक्षयस्तेऽहमिह   लोके परत्र च।।

अर्थात् 'ब्रह्मविद्या अतिखिन्न होकर ब्रह्मिष्ठ ब्राह्मण के पास गयी और बोली कि 'तुम मुझे वेश्या की तरह सर्वभोग्य मत बनाओ, अपितु कुलवधू की तरह मेरी रक्षा करो। मैं इस लोक और परलोक के लिये तुम्हारा अक्षयकोश हूँ।'

इसके आगे यह विद्या किसे नहीं देनी चाहिये और किसे देनी चाहिये, यह भी बताया

गया है—

निन्दा गुणवतां तद्वत् सर्वदार्जवशून्यता।
इन्द्रियाधीनता नित्यं स्त्रीसङ्गश्चाविनीतता।।
कर्मणा मनस वाचा गुरौ भक्तिविवर्जनम्।
एवमाद्या येषु दोषास्तेभ्यो वर्चय मां सदा।।
एवं हि कुर्वतो नित्यं कामधेनुरिवास्मि ते।
वन्ध्यान्यथा भविष्यामि लतेव फलवर्जिता।।

अर्थात् 'गुणवानों की निरन्तर निन्दा करना, आर्जवशून्यता, इन्द्रियों का दासत्व, नित्य स्त्रीप्रसङ्ग और उद्दण्डता तथा मन, वाणी, कर्म से गुरु के प्रति भक्तिहीनता आदि ऐसे दोष जिनमें वर्तमान हों उनसे सदा मेरी रक्षा करना। सावधानी से ऐसा करते रहोगे तो मैं कामधेनु की तरह तुम्हारे सर्वमनोरथों को पूर्ण करने वाली होऊँगी। ऐसा न करने पर फलों से रहित लता की तरह मैं वन्ध्या हो जाऊँगी।'

'षोडशिकार्णव' में भी कहा गया है—

न देयं परशिष्येभ्यो नास्तिकानां न चेश्वरि।
न शुश्रूषालसानां च नैवानर्थप्रदायिनाम् ।।

—'पराये गुरु के शिष्यों को, नास्तिकों को, सुनने का अनिच्छावालों को एवं अनर्थ बढ़ाने वाले को यह विद्या कभी कभी नहीं देना चाहिये।' यही नहीं, यदि लोभ—मोह से ऐसे व्यक्ति को कोई इसका उपदेश देता है तो वह उपदेष्टा गुरु उस शिष्य के पापों से लिप्त होता है—

तस्मादेवविधं शिष्यं न गृह्णीयात् कदाचन।
यदि गृह्णाति मोहेन तत्पापैर्व्याप्यते गुरुः।।

उपर्युक्त दोषों से रहित और शम, दम, तितिक्षा आदि गुणों से युक्त साधक को ही श्रीविद्या प्रदान करनी चाहिये। ऐसे अधिकारी को भी एक वर्षतक परीक्षा करके ही श्रीविद्या का उपदेश देना चाहिये, जैसा कि कहा है—

परीक्षिताय दातव्यं वत्सरोर्ध्वोषिताय च ।
एतज्ज्ञात्वा वरारोहे सद्यः खेचरतां व्रजेत्।।

श्रीविद्या के तीन रूप हैं— १. स्थूल, २. सूक्ष्म और ३. पर। तीनों का तो इस सीमित लेख में आवश्यक विवेचन सम्भव नहीं है अत: यहाँ विशेषरूप से इसके स्थूलरूप के निरूपण का प्रयास किया जा रहा है। जहाँ स्थूलरूप श्रीचक्रार्चन और सूक्ष्मरूप श्रीविद्यामन्त्र है वहीं पर—विद्या देह में श्रीचक्र की भावना की विधि है। आचार्य शंकर के मतानुसार चौंसठ तन्त्रों का व्याख्यान करने के अनन्तर पराम्बा के निर्बन्ध से श्रीविद्या का व्याख्यान भगवान् सदाशिव ने किया, अत: यह ६५वाँ तन्त्र है। आचार्यो ने 'वामकेश्वर—तन्त्र' को जिसमें 'नित्याषोडशिकार्णव' तथा 'योगिनीहृदय', दो चतुश्शती हैं— हीं श्रीविद्या का पूर्णरूप से विधान करनेवाला ६५वाँ (मतान्तर से ७८वाँ) तन्त्र माना है, अत: उसी के अनुसार यहाँ सर्वसुलभ भावभाषा में इस विषय पर प्रकास डाला जा रहा है।

श्रीयन्त्र का स्वरूप

'श्रीचक्रं शिवयोर्वपु:'— श्रीयन्त्र शिव—शिवाका विग्रह है। **'एका ज्योतिरभूद् द्विधा'**— सृष्टि के प्रारम्भ में अद्वैततत्त्व प्रकाशस्वरूप एक ज्योति ही दो रूपों में परिणत हुई। यह जगत् **'जनकजननीमज्जगदिदम्'**— माता—पिता शिव—शक्ति के रूप में परिणत हुआ। फिर इस जगत् का स्वेच्छा से निर्माण करने के लिये उस परम शक्ति में स्फुरण हुआ और सर्वप्रथम श्रीयन्त्र का आविर्भाव हुआ—

यदा सा परमा शक्ति: स्वेच्छया विश्वरूपिणी।
स्फुरतामात्न: पश्येत्तदा चक्रस्य सम्भव: ।। (नित्याषोड०)

बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्म—
मन्स्रनागदलसंयुतषोडशारम्।
वृत्तत्रयं च धरणीसदनत्रयं च
श्रीचक्रराजमुदितं परदेवताया:।।

बिन्दु, त्रिकोण, अष्टकोण, अन्तर्दशार—बहिर्दशार, चतुर्दशार, अष्टदल, षोडशदल, वृत्तत्रय, भूपुर— इन नवयोन्यात्मक समस्त ब्रह्माण्ड का नियामक रेखात्मक श्रीयन्त्र का प्रादुर्भाव हुआ।

वैन्दवं चक्रमेतस्य त्रिरूपत्वं पुनर्भवेत।
धर्माधर्मौ तथात्मान: मातृमेयौ तथा प्रभा।।

नवयोन्यात्मकमिदं चिदानन्दधनं महत्।

—(नि०षो०)

सर्वप्रथम बिन्दु के तीन रूप हुए— धर्म-अधर्म, चार आत्मा मार्तृ-मेय और प्रमा त्रिपुटी। धर्म और अधर्म दो, आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा, ज्ञानार्त्मा-चार, मातृ, मेय, प्रर्मा-ये तीन इस प्रकार नौ हुए। त्रिकोण और अष्टकोण यही नवयोन्यात्मक श्रीचक्र है। शेष सब कोणों और दलों का इसी नवयोनियों मे समावेश हो जाता है। ब्रह्माण्ड पुराण में लिखा है—

त्रिकोणे बैन्दवं श्लिष्टमष्टारेऽष्टदलाम्बुजम्।
दशारयोः षोडशारं भूगृहं भुवनास्त्रके।।

इस मार्ग का प्रामाणिक ग्रन्थ श्रीगौड़ापादाचार्य विरचित 'सुभगोदय—स्तुति' है। शंकरभगवत्पाद विरचित 'सौन्दर्यलहरी' में श्रीविद्यामन्त्र, यन्त्र आदि का साङ्गोपाङ्ग विवेचन है। इसकी अनेक आचार्यो द्वारा की हुई अनेक टीकाएँ भी उपलब्ध हैं इसके सौ श्लोक सौ ग्रन्थों के समान हैं। यह भगवती की साक्षात् वाङ्मयी मूर्ति ही है। इसी के आधार पर विरचित पद्धतियाँ दक्षिण भारत और उत्तर भारत से प्रकाशित हुई हैं। इन पद्धतियों के अनुसार पूजा करने में कम से कम ढाई घण्टे का समय लगता है। इसकी यह विशेषता है कि इतने समय में मन इधर—उधर कहीं नहीं जा पाता। फलत: क्रमश: आणव, कार्मिक, मायिक मलों की शुद्धि से उपास्यतत्त्व की उपलब्धि हो जाती है। **'अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते'**— इस श्रुति के अनुसार कर्मकाण्ड द्वारा अन्त:करण शुद्ध होने पर तत्त्वज्ञान की स्थिति बनती है। इस प्रकार इस साधना की यही विशेषता है कि इससे भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं।

यह एक परमकल्याणकारी सरल सुगम साधना हैं। **'श्रेयांसि बहु विघ्नानि'** के अनुसार ऐसे कल्याणकारी कार्यो में प्राय: विघ्नों की सम्भावना रहती है, इसलिये इसमें महागणपति की उपासना अनिवार्य है। जैसे राजा से मिलने के लिये पहले मन्त्री से मिलना आवश्यक है वैसे ही मातङ्गी की उपासना भी इसकी अङ्गभूत है। मातङ्गी पराम्बा राजराजेश्वरी ललिता महात्रिपुरसुन्दरी की मन्त्रिणी हैं। इनके 'श्यामला', 'राजमातङ्गी' आदि नाम हैं। ये भक्त के समस्त ऐहिक मनोरथ पूर्ण करती हैं। शिष्टानुग्रह और दुष्ट—निग्रह के लिये 'वार्ताली' का उपासनाक्रम भी अनुष्ठेय है। ये पराम्बा की दण्डनायिका (सेनाध्यक्ष) हैं। इनके वाराही, वार्ताली, क्रोडमुखी आदि नाम है। ये

साधक की सर्वप्रकार से रक्षा करती और शत्रुओं का दलन करती हैं। इस प्रकार इसमें गणपतिक्रम, श्रीक्रम, श्यामलाक्रम, वार्तालीक्रम, पराक्रम– ये पाँच क्रम विहित हैं।

प्रात:काल गणपतिक्रम, पूर्वाह्ण में श्रीक्रम, अपराह्ण में श्यामलाक्रम, रात्रि में वार्तालीक्रम और उषाकाल में पराक्रम का विधान है। इन पाँच क्रमों की 'सपर्या पद्धति' भी प्रकाशित है। 'श्रीविद्यारत्नाकर' में इनके मन्त्र यन्त्र, पूजाविधान, जप आदि का साङ्गोपाङ्ग विवरण है। इस छोटे से लेख में इनका विशद विवेचन सम्भव नहीं है। दीक्षाकाल में ही इनका गुरुद्वारा निर्देश होता है। इन क्रमों के प्रभाव से ही यह श्रीविद्यासाधना भोग मोक्ष प्रदायिनी कही गयी है।

इस प्रकार श्रीयन्त्र की पूजामात्र से ही जीव शिवभाव को प्राप्त हो जाता है। योग एवं वेदान्त आदि साधन पथ सर्वसाधारण के लिये सुलभ नहीं, क्योंकि ये अत्यन्त क्लिष्ट और चिरकालसाध्य हैं। इसके विपरीत तान्त्रिक विधि के साधन सरल, सर्वजनोपयोगी तथा शीघ्र ही अनुभूति प्रदान करने वाले हैं।

श्रीयन्त्र की पूजामात्र से आत्मज्ञान कैसे होता है, इसका संक्षिप्त परिचय देना हो तो कहा जायेगा कि समस्त साधन–सरणियों का चरम लक्ष्य है 'मनोनिग्रह'– मन की एकाग्रता। यदि उत्तमोत्तम साधनमार्ग भी अपनाया गया, किन्तु मन एकाग्र नहीं हुआ तो सारा प्रयास विफल है। **'मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:।'** सांसारिक व्यवहार से लेकर निर्गुण ब्रह्मज्ञान तक मन ही कारण है। मनोयोग ही समस्त कार्य–कलापों में प्रधान है।

श्रीसदाशिवप्रोक्त आगम–साधना–सरणि में तो समस्त क्रियाएँ ही मन के एकाग्र करने के लिये बतायी गयी हैं। श्रीमद्भागवत में लिखा है–

य आशु हृदयग्रन्थिं निर्जिहीर्षु: परात्मन:।
विधिनोपचरेद् देवं तन्त्रोक्तेन च केशवम्।।

अर्थात् 'जो शीघ्र हृदयग्रन्थि का भेदन चाहता है, वह तान्त्रिक विधि से केशव की आराधना करे।' 'केशव' यह उपलक्षण है, किसी देवता की साधना करे।

'श्रीविद्या–साधना' तन्त्र शास्त्रों में सर्वोच्च मानी गयी है। इसे भगवती पराम्बा के निर्बन्ध से भगवान् विश्वनाथ ने प्रकट किया है। अत: इसमें मन को एकाग्र करने की विशिष्ट क्रियाएँ समवेत की गयी है। देखिये, श्रीयन्त्र की पूजा में मन को किस प्रकार एकाग्र करने की विलक्षण

प्रक्रिया है–

देवो भूत्वा यजेद् देवान् नादेवो देवमर्चयेत्।

देवता बनकर ही देवता का पूजन करने का शास्त्र का आदेश है। इस पूजा में सर्वप्रथम भूतशुद्धि का स्पष्ट विधान है। जिसमें प्राणायाम द्वारा हृदय में स्थित पापपुरुष का शोषण दहन पूर्वक शम्भव–शरीर का उत्पादन कर पञ्चदश–संस्कार, प्राणप्रतिष्ठा, मातृकादि न्यासों से मन्त्रमय शरीर बनाया जाता है, जिससे देवभाव की उत्पत्ति होती है। तन्त्रों में महाषोढ़ा न्यासादि का महाफल लिखा है– **'एवं न्यासेकृते देवि साक्षात् परशिवो भवेत्'**। इस प्रकार स्वस्थ मन, स्वच्छ वस्त्र और सुगन्धित वस्तुओं से सुरभित वातावरण में यह पूजा की जाती है।

श्रीयन्त्र की पूजा करने के लिए कलश, समान्यार्घ्यपात्र, विशेषार्घ्य (श्रीपात्र), शुद्धिपात्र, गुरुपात्र, आत्मपात्र आदि पूजा–पात्रों का आसादन होता है।

सामान्यार्घ्य की स्थापना को ही लीजिये तो पहले पात्राधार के लिये एक मण्डल बनाया जाता है। उसका मूल मन्त्र के षडङ्ग से अर्चन होता है। फिर उसपर आधार का स्थापन होता है। इसमें अग्नि मन्त्र से अग्निमण्डल की भावना की जाती है एवं दस वह्निकलाओं का पूजन होता है। तदनन्तर आधार पर सामान्यार्घ्यपात्र का स्थापन किया जाता है। फिर उसमें सूर्य–मन्त्र से सूर्यमण्डल की भावना कर द्वादश सूर्यकलाओं का अर्चन होता है। फिर कलाओं का पूजन होता है। फिर षडङ्ग अर्चन किया जाता है। इस प्रकार सामान्यार्घ्य स्थापना करने में इतना क्रियाकलाप है। विशेषार्घ्य–स्थापन में इससे भी अत्यधिक प्रपञ्च है। इस तरह पात्रों को स्थापन करने की क्रिया में ही मन को इतना समाहित किया जाता है। फिर अन्तर्याग, बहिर्याग, चतु:षष्टि उपचार, श्रीचक्र में स्थित नवावरण में शताधिक शक्तियों का अर्चन, जिसमें तत्तत्–शक्तियों का मन्त्रोच्चार, श्रीयन्त्र के तत्तत् कोण में स्थित तत्तत् शक्ति का ध्यान, पुष्पाक्षत निक्षेप एवं श्रीपात्रामृत से तर्पण– यह क्रिया एक शक्ति के अर्चन में एक साथ होनी आवश्यक है। इसमें किंचित् भी मन विचलित हुआ तो पूजन–क्रम में व्याघात उत्पन्न हो जाता है। अत: इन क्रियाओं के सम्पादन में साधक का मन बलात् एकाग्र हो जाता है।

इस प्रकार पूजा के अनवरत प्रयोग से शनै:–शनै: मनका चाञ्चल्य दूर होकर वह समाहित होने लगता है मनकी यही स्थिति ध्यान एवं समाधि–अवस्था की प्राप्ति में सहायक सिद्ध हो जाती है।

इस प्रकार इसी जीवन में क्रमश: श्रीयन्त्र की यह पूजा जीवन्मुक्तवस्था एवं शिवत्वभाव की प्राप्ति का अनुपमेय अमोध साधन है, जैसा कि कहा है–

एवेमव महाचक्रसंकेत: परमेश्वरि ।
कथितस्त्रिपुरादेव्या: जीवन्मुक्तिप्रवर्तक:।।

श्रीविद्या-मन्त्र

श्रीविद्यामन्त्र श्रीयन्त्र की पूजा का अभिन्न अङ्ग है। मन्त्र के चार रूप हैं– बाला त्रिपुरसुन्दरी त्र्यक्षरी, पञ्चदशाक्षरी, षोडशी एवं महाषोडशी। फिर इनके अनेक अवान्तर भेद हैं। इनमें कादि और हादि दो मुख्य भेद प्रचलित हैं। कादि मन्त्र की उपासना परम्परा अत्यन्त विशाल है। आचार्य शंकर ने भी 'त्रिशती' पर भाष्य लिखकर कादि मन्त्र को ही विशेष महत्त्व दिया है। इसे सत्तर करोड़ मन्त्रों का सार माना जाता है।

वर्णमाला के पचास अक्षर हैं। इन्हीं पचास अक्षरों से समस्त वेदादि–शास्त्र एवं समस्त मन्त्रविद्या ओत–प्रोत हैं। इस वर्णमाला का नाम 'मातृका' है। यह समस्त वाङ्मय एवं विश्व की प्रसवित्री है। 'नित्याषोडशिकार्णव' की मातृकास्तुति में सर्वप्रथम मङ्गलाचरण के रूप में इसी का उल्लेख है। कहाहै कि जिसके अक्षररूप महासूत्र में ये तीनों जगत् स्थूल, सूक्ष्म, समस्त ब्रह्माण्ड अनुस्यूत है, उस सिद्ध मातृका को हम प्रणाम करते हैं–

यदक्षरमहासूत्रप्रोतमेतज्जगत्त्रयम् ।
ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं तां वन्दे सिद्धमातृकाम्।।

भगवान् सदाशिव ने मातृका के सारसर्वस्व से अचिन्त्य, अनन्त, अप्रमेय, महाप्रभावशाली महामन्त्र का प्राकट्य किया है। 'योगिनीहृदय' ने इसे जगत् के माता–पिता शिव–शक्ति के सामरस्य से समुद्भूत माना है–

शिवशक्तिसमायोगाज्जनितो मन्त्रराजक:।

वेदविद्या के मन्त्र प्रकट हैं, जब कि श्रीविद्यामन्त्र गुप्त है। श्रीविद्या का मन्त्र सम्प्रदायपुरस्सर गुरुपरम्परा के द्वारा प्राप्त करने से ही इसके रहस्य का ज्ञान हो सकता है। इस मन्त्र के अनेक आकार–प्रकार हैं। इसके छ: प्रकार के अर्थ हैं– भावार्थ, सम्प्रदायार्थ, निगमार्थ, कौलिकार्थ, सर्वरहस्यार्थ और महातत्त्वार्थ। यह सब गुरुपरम्परा के द्वारा ली लभ्य है। 'योगिनीहृदय' में यही

कहा गया है–

मन्त्रसंकेतकस्तस्या नानाकारो व्यवस्थितः।
नानामन्त्रक्रमेणैव पारम्पर्येण लभ्यते।।

इस मन्त्र के गूढ़ रहस्यों का ज्ञान परम्परा से साधना करने वालों को ही होता है। यदि कोई पुस्तक में पढ़कर या अन्य छल–छिद्रों से इस मन्त्र को प्राप्त करता और अपने ज्ञान के गर्व से मनमाने ढंग से जपता है तो लाभ की जगह हानि ही होती है, जैसा कि कहा है–

पारम्पर्यविहीना ये ज्ञानमात्रेण गर्विताः।
तेषां समयलोपेन विकुर्वन्ति मरीचयः।। –(यो० हृ०)

अतः गुरुपरम्परा से प्राप्त इस विद्या का ज्ञान प्राप्त करने से उत्तमोत्तम फल प्राप्त होते हैं। यह विद्या ज्ञानमात्र से भवबन्धन से छुटकारा, स्मरण से पापपुञ्ज का हरण, जप से मृत्युनाश, पूजा से दुःख दौर्भाग्य व्याधि और दरिद्रता का विध्वंस, होम से समस्त विघ्नों का शमन, ध्यान से समस्त कार्यसाधन करने वाली है।

श्रीविद्यामन्त्र में समस्त मन्त्रों का समावेश है। 'योगिनीहृदय' में कहा है–

वागुरामूलवलये सूत्राद्याः कवलीकृताः।
तथा मन्त्राः समस्ताश्च विद्यायामत्र संस्थिताः।।

'जैसे मत्स्य फँसाने के जाल के सभी तन्तु लोहे के वलय में पिरोये रहते हैं, वैसे ही इस श्रीविद्यामन्त्र में समस्त मन्त्र ओत–प्रोत हैं।' इसके समान या इससे उत्तम दूसरा मन्त्र नहीं है।

कुण्डलिनी शक्ति से इस मन्त्र का साक्षात् सम्बन्ध है। तन्त्रमार्ग की साधना का कुण्डलिनीजागरण ही प्रधान अङ्ग है। यह मन्त्र योग से ही सरलता से यथा शीघ्र सिद्ध होना सम्भव है। इसलिये शास्त्रों में इसकी महिमा और गरिमा का अत्यधिक वर्णन है। यही श्रीविद्या का सूक्ष्मरूप कहा जाता है। इससे उच्चारण और जपविधि में ही रहस्य भरा हुआ है।

तन्त्रों में महाषोडशी के मन्त्र का एक बार भी उच्चारण महाफलप्रद लिखा है–

वाक्यकोटिसहस्रेषु जिह्वाकोटिशतैरपि।
वर्णितुं नैव शक्योऽहं श्रीविद्यां षोडशाक्षरीम्।।

एकोच्चारणं देवेशि वाजपेयस्य कोटय:।
अश्वमेधसहस्राणि प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा।।
काश्यादितीर्थयात्राः स्युः सार्धकोटित्रयान्विता:।
तुलां नार्हन्ति देवेशि नात्र कार्या विचारणा।।

स्वयं भगवान् सदशिव पार्वती से कहते हैं कि कोटि–कोटि वाक्यों से एवं कोटि–कोटि जिह्वा से भी श्रीविद्या षोडशाक्षरी का मैं वर्णन नहीं कर सकता। एक बार उच्चारणमात्र से कोटि वाजपेय यज्ञ, सहस्रों अवश्मेध यज्ञ, समस्त पृथिवी को प्रदक्षिण एवं काशी आदि तीर्थों की करोड़ो बार यात्रा इस श्रीविद्यामन्त्र के समान नहीं है। देवेशि! इसमें कोई संशय नहीं।

साधक का कर्तव्य है कि वह स्थूलरूप श्रीचक्रार्चन, सूक्ष्मरूप श्रीमन्त्र और पररूप शरीर को ही श्रीचक्ररूप में भावित कर कृतकृत्य हो जाय।

श्रीविद्या के पररूप की उपासना का फल भावनोपनिषद् में लिखा है– **'एवं भावनापरो जीवन्मुक्तो भवति, स शिवयोगीति निगद्यते।'** इस प्रकार भावना करने वाला जीवन्मुक्त होता है और वह शिवयोगी कहा जाता हैं। इस भावनोपनिषद् की प्रयोगविधि महायाग क्रम में भास्करराय लिखते हैं– **'तस्या देवतात्मैक्यसिद्धिः, तस्य चिन्तितकार्याणि अयत्रेन सिद्धयन्ति'** अर्थात् उस साधक का देवता के साथ तादात्म्यभाव हो जाता है और उसके चिन्तित कार्य बिना यत्न के ही सिद्ध हो जाते हैं।

इस प्रकार परम रहस्यमयी सर्वोत्कृष्ट श्रीविद्या की साधना–सरणि के यथार्थ रूप का उल्लेख सर्वथा असम्भव है। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि इस श्रीविद्यासाधना पद्धति का अनुष्ठान और प्रचार चार भगवत् अवतारों– दत्तात्रेय, श्रीपरशुराम, भगवान् हयग्रीव एवं भगवत्पाद आद्यशंकराचार्य ने किया और इसे सर्वजनोपयोगी सरल बनाने में उत्तरोत्तर श्लाधनीय कार्य किया। भक्ति, ज्ञान, कर्मयोग आदि समस्त साधनामार्गो का यह समुच्चय है। जिस स्तर का साधक हो, उसके लिये तदनुकूल साधना का उच्चतम एवं श्रेष्ठतम सुन्दर विधान परिलक्षित हो जाता है। अत: इसकी उपादेयता सर्वोत्तम मानी जाती है। यही साक्षात् ब्रह्मविद्या है।

भगवत्पाद आचार्य शंकर कहते है कि सरस्वती ब्रह्मा की गृहिणी हैं, विष्णु की पत्नी पद्मा, शिव की सहचरी पार्वती हैं। किन्तु आप तो कोई अनिर्वचनीया तुरीया हैं, समस्त विश्व को विवर्त

करने वाली दुरधिगम निस्सीम—महिमा महामाया परब्रह्म की पट्टमहिषी पटरानी है—

गिरामाहुर्देवीं द्रुहिणगृहिणीमागमविदो
हरेः पत्नीं पद्मां हरसहचरीमद्रितनयाम्।
तुरीया कापि त्वं दुरधिगमनिःसीममहिमा
महामाया विश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषी।। (सौ० ल० ९२)

श्रीविद्या साधकों के लिये गुरुमुख से प्राप्त निर्देश

— कल्याणानन्दनाथ

प्रश्न:—प्रात: स्मरण कितने बजे के पश्चात् किया जा सकता है?

उत्तर— प्रात: स्मरण कम से कम प्रात: ३.०० बजे के पश्चात् होना चाहिये क्योंकि प्रात: ३.०० बजे से ऊषाकाल प्रारम्भ होता है।

रश्मिमाला मंत्र एवं अजपा जप समर्पण सूर्योदय के पूर्व ही किया जाना अनिवार्य है। रश्मिमाला मंत्र छूटने पर उसके स्थान पर एक माला मूल मंत्र का जप किया जाना चाहिये। रात्रि के वस्त्रों में यदि दीर्घ शंका गये हो तो उन्हें प्रात: स्मरण के लिये बदलना आवश्यक है। यात्रा, अस्वस्थता आदि के कारण सूक्ष्मतम प्रात: स्मरण में गुरु पादुका मंत्र एवं १० बार मूल मंत्र का जप किया जाना चाहिये।

प्रश्न:—पूजा के वस्त्र कैसे होने चाहिये?

उत्तर— कमर के नीचे रेशम अथवा ऊनी वस्त्र (१०० प्रतिशत शुद्ध अर्थात् बिना किसी मिलावट के) होने चाहिये। कमर के नीचे का वस्त्र यदि रेशम अथवा ऊनी नहीं है तो वह उतारते ही अशुद्ध माना जाता है।

कमर के ऊपर का वस्त्र यदि सूती भी हो तो भी पुन: प्रयोग किया जा सकता है। चाहे कितनी भी गर्मी हो कमर के ऊपर का वस्त्र अनिवार्य है। सांकेतिक रूप से ही चाहे हल्का सा दुपट्टास्वरूप वस्त्र डालना आवश्यक है।

प्रश्न:—आसन किस प्रकार का होना चाहिये?

उत्तर— उत्तम आसन में सबसे नीचे कुशा उसपर मृगचर्म एवं सबसे ऊपर शुद्ध ऊन का आसन होना चाहिये। गर्मी के मौसम में ऊन के उपर सूती आसन भी (गाँधी आश्रम की आसनी) मान्य है परन्तु उन्हे पूजा कक्ष से बाहर नहीं ले जाना चाहिये।

प्रश्न:—पूजा किस आसन में की जानी चाहिये?

उत्तर— पूजा हेतु सिद्ध आसन सर्वोत्तम है परन्तु गृहस्थों के लिये लम्बे समय तक करना वाञ्छनीय नहीं है। पूजा में दीर्घकाल बैठने में वज्र आसन एक उत्तम विकल्प है। अन्य आसनों में पद्मासन एवं सुखासन भी मान्य है।

प्रश्न:—तिलक एवं भस्म किस प्रकार लगायें?

उत्तर— तिलक सूखा अथवा जल से गीला करके आज्ञा चक्र पर लगाया जाता है। भस्म प्रातः काल जल से गीला करके एवं मध्याह्न एवं उसके पश्चात् सूखी ही क्रम से मस्तक, हृदय एवं दोनो बाहुओं पर लगाई जाय।

प्रश्न:—पंच-पात्र से आचमन किस प्रकार किया जाना चाहिये?

उत्तर— दाहिने हस्त पर जल लेकर आचमन किया जाना चाहिये। आचमनी से सीधे मुख में यद्यपि बिना सम्पर्क ही जल ग्रहण करने पर भी आचमनी एवं पंच-पात्र उच्छिष्ट माने जाते हैं।

प्रश्न:—श्यामला का जप किस समय किया जाना चाहिये?

उत्तर— श्यामला का जप मध्याह्न से सूर्यास्त के बीच ही अनुमन्य है। मध्याह्न की गणना सूर्योदय में छः घण्टे का योग करके की जायेगी। सूर्योदय एवं सूर्यास्त का समय सूर्य सिद्धान्त अनुसार ही मान्य होगा।

नौकरी पेशा वाले अथवा अन्य कारणो से साधकों के लिये उक्त निर्धारित काल में औपचारिक रूप से पूजा वस्त्र में आसन पर बैठना सम्भव नहीं हो पाता है। ऐसी परिस्थिति में बिना किसी न्यास/विनियोग के मात्र ध्यान कर २७ बार मानसिक जप किया जा सकता है। जप के पहले ०३ बार विघ्नोत्सारण मंत्र एवं जप के पश्चात् ३—३ बार अंग, उपांग एवं प्रत्यंग जप किये जाने चाहिये।

प्रश्न:—रात्रि देवी के जप का निर्धारित काल क्या है?

उत्तर— रात्रि देवी का जप सूर्यास्त के कम से कम ४५ मिनट पश्चात् ही किया जाना चाहिये। उत्तमकाल सूर्यास्त के ०३ घण्टे के पश्चात् है एवं सर्वोत्कृष्ट समय मध्य रात्रि एवं उसके निकट का है।

यथासम्भव रात्रि देवी के जप को पूजा वस्त्रों में औपचारिक रूप से आसन पर ही किया जाना चाहिये एवं केवल यात्रा जैसी अपरिहार्य परिस्थितियों में ही उपरोक्त श्यामला अनुसार ही २७ बार मानसिक जप करना चाहिये।

प्रश्न:—ग्रहण काल में क्या करना चाहिये?

उत्तर— ग्रहण काल में सामान्यतया मूल मंत्र का पुरश्चरण ग्रहण के स्पर्श से मोक्षपर्यन्त करना चाहिये। सामान्य तौर पर सूर्यग्रहण में गणपति का एवं चन्द्रग्रहण में भवगती के मंत्रों का पुरश्चरण

करना चाहिये। इस पुरश्चरण में दशांश, अंग, उपांग एवं प्रत्यंग के जप की आवश्यकता नहीं है क्योकि सिद्धान्ततः पुरश्चरण एकल मंत्र को चैतन्य करने के लिये होता है। ग्रहणकालीन जप की कुल संख्या के दशांश का द्विगुना अर्थात् २० प्रतिशत जपग्रहण के पश्चात कभी भी निकट भविष्य में हवन इत्यादि के स्थान में किया जाना चाहिये। पुरश्चरण करने वाले साधकों के लिये ग्रहण उपरान्त स्नान करना आवश्यक नहीं है। ग्रहणकालीन पुरश्चरण में किसी भी दशा में (लघुशंका आदि हेतु) आसन छोड़ना अनुमन्य नहीं है। अतः यदि ग्रहण का काल अधिक है (उदाहरणस्वरूप ०३ ०४ घण्टा) तो स्पर्श से कम से कम ०६ से ०८ घण्टा पूर्व जल आदि ग्रहण नहीं करना चाहिये ताकि लघुशंका के लिये उठना न पड़े। यदि साधक को आशंका होती है कि वह ०४ घण्टे जैसे लम्बे ग्रहण में आसन पर नहीं रह पायेगा तो फिर उसे ग्रहणकालीन पुरश्चरण का संकल्प नहीं लेना चाहिये एवं इस पुरश्चरण के स्थान पर पूर्वांग एवं उत्तरांग सहित सुविधानुसार यथोचित मात्रा में ग्रहण काल में जप करना चाहिये।

चन्द्र एवं सूर्य ग्रहण का सूतक स्पर्श से ०९ अथवा १२ घंटे पूर्व गुरु परम्परा के अनुसार भिन्न–भिन्न माना जाता है। जानकारी न होने की दशा में कम से कम दोनों ही ग्रहण में ०९ घंटे का सूतक अनिवार्य रूप से माना जाना चाहिये। सूतक लगने से पूर्व ही भगवान् के विग्रह, यंत्र आदि का पूजन समाप्त कर उन्हे वस्त्र से ढक दिया जाना चाहिये क्योंकि सूतक अथवा ग्रहणकाल में भगवान् का पूजन, दर्शन, स्पर्श आदि निषेध है एवं उक्त काल में मात्र न्यास, जप एवं पाठ किया जाना अनुमन्य है। सूतक काल में अन्न ग्रहण करने का निषेध है परन्तु वृद्ध, बालक एवं अस्वस्थ व्यक्तियों के लिये ये नियम शिथिल हो सकता है।

प्रश्न:–पर्व की रात्रि में पूजन की विधि क्या होनी चाहिये?

उत्तर– श्रीविद्या में ०४ पर्व रात्रिव्यापिनी तिथि अनुसार माने जाते हैं यथा– रात्रिव्यापिनी, कृष्णाष्टमी, कृष्ण चतुर्दशी, अमावस्या एवं पूर्णिमा। इन पर्वों पर सूर्यास्त के पश्चात् रात्रि की महापूजा नैमित्तिक कर्म अनुसार की जाती है। यात्रा, अस्वस्थता आदि के कारण यदि महापूजा सम्भव न हो तो उसके एवज में मूल मंत्र का १० माला अर्थात् एक सहस्त्र जप उसी रात्रि में अथवा निकट भविष्य में किया जाना चाहिये। जप का पूर्वांग यथा अधिकार एवं जप के उत्तरांग में दशांश मात्रा में क्रमशः ०९ चक्रेश्वरियों का जप दशांश संख्या में तत्समय व्याप्त अर्थात् पर्व की तिथिनित्या का जप एवं दशांश संख्या प्रत्येक में अंग, उपांग एवं प्रत्यंग का जप किया जाना

चाहिये।

रात्रिव्यापिनी तिथि का निर्णय सूर्य सिद्धान्त के अनुसार किया जाना चाहिये एवं सामान्यतया रात्रिव्यापिनी पर्व की तिथि लग जाने पर ही महापूजा प्रारम्भ की जानी चाहिये परन्तु यदि रात्रिव्यापिनी पर्व की तिथि अत्यधिक विलम्ब से लग रही हो एवं अगले दिवस पर रात्रिव्यापिनी तिथि उपलब्ध न हो तो सूर्यास्त के पश्चात् महापूजा प्रारम्भ करना निषेध नहीं है। रात्रिव्यापिनी तिथि की परिभाषा यह है कि वह तिथि सूर्यास्त के पश्चात् और सूर्योदय के पूर्व कम से कम ०३ घंटे तक उपलब्ध हो।

सूर्यास्त के पश्चात् ही पर्व की महापूजा प्रारम्भ करने के उक्त नियम का एक ही अपवाद है कि दीपावली की अमावस्या की रात्रि पूजा सूर्यास्त से पूर्व प्रारम्भ की जा सकती है एवं सूर्यास्त हो इतने समय पूर्व प्रारम्भ की जानी चाहिये कि मंगला आरती ठीक सूर्यास्त के समय सम्पन्न हो जाय एवं उसी आरती के साथ भगवती को दीपदान (११ अथवा २१ दीपकों का) देकर निवास स्थान के सभी दीपक उसी अग्नि से प्रज्ज्वलित कर दिये जायें।

रात्रि पर्व की महापूजा के संकल्प में तिथि तो उदया ही पढ़ी जायेगी परन्तु तिथिनित्या वह पढ़ी जायेगी जोकि रात्रिव्यापिनी पर्व की तिथि अनुसार हो। यह वांछनीय होगा कि यदि रात्रि पर्व की तिथिनित्या सूर्यास्त के समय न होकर सूर्यास्त के पश्चात् कुछ विलम्ब से लग रही हो तो पर्व की महापूजा को सूर्यास्त के पश्चात् कुछ विलम्ब से प्रारम्भ किया जाय ताकि रात्रिव्यापिनी पर्व की तिथिनित्या, जिसका कि संकल्प लिया गया है, का महापूजा क्रम में जिस समय तर्पण पूजन का समय आये उस समय तक रात्रिव्यापिनी पर्व की तिथिनित्या लग गई हो अर्थात प्रारम्भ हो गई हो।

पूर्णिमा पर्व पर नवआवरण पूजा उपरान्त यथाशक्ति ललिता सहस्रनाम अर्चन एवं त्रिशती अर्चन शास्त्र निर्धारित द्रव्यों द्वारा किया जाना चाहिये। शेष पर्वो पर अर्चन के स्थान पर सहस्रनाम पाठ एवं त्रिशती पाठ भी किया जा सकता है। सभी पर्वो की रात्रि महापूजा के अन्तर्गत कल्याणवृष्टि स्तोत्र का यथास्थान पाठ भी किया जाना चाहिये।

प्रश्न:– चतुर्थी पर्व का निर्णय एवं पूजन किस प्रकार होगा?

उत्तर– शुक्ल पक्ष की चतुर्थी का पर्व वह माना जायेगा जिस दिन चतुर्थी मध्याह्नव्यापिनी हो अर्थात् मध्याह्न के क्षण पर चतुर्थी तिथि होनी चाहिये। इसी प्रकार कृष्ण पक्ष के चतुर्थी का पर्व उस दिवस पर माना जायेगा जब चतुर्थी तिथि रात्रिव्यापिनी हो अर्थात् सूर्यास्त के पश्चात् कम से

कम ०३ घंटे के लिये हो एवं अनिवार्य रूप से चन्द्रोदय के समय चतुर्थी तिथि उपलब्ध हो। इन पर्वो पर गणपति का दूर्वा, श्वेत अपराजिता, लावा के अतिरिक्त मोदक से २१ नाम अर्चन करना चाहिये एवं यथासमय गणपति सहस्र नाम स्तोत्र का पाठ किया जाना चाहिये। इन पर्वो पर अर्क विनायक को इत्र से पूर्ण स्नान भी कराया जा सकता है।

प्रश्न:—ललिता सहस्रनाम स्तोत्र के पाठ का विशेष महत्त्व कब है?

उत्तर— सहस्त्रनाम के पाठ का विशेष महत्त्व उसी की फलश्रुति अनुसार महापूजा क्रम अर्न्गत जप के ठीक पश्चात है।

इसी प्रकार त्रिशती स्तोत्र का पाठ सर्वपूर्तिकर स्तोत्र के रूप में रात्रि में यंत्र को स्नान एवं पुष्पांजलि आदि के पश्चात् किया जाना श्रेयस्कर है क्योंकि उससे दिन भर के लुप्त कर्मो की पूर्ति हो जाती है।

सहस्रनाम एवं त्रिशती स्तोत्र के नित्य पाठ में पूर्वाद्ध एवं उत्तराद्ध आवश्यक नहीं है परन्तु विशेष उद्देश्य से पाठ करने (अर्थात् संकल्प सहित) में पूर्वाद्ध एवं उत्तराद्ध सहित ही सहस्रनाम एवं त्रिशती स्तोत्र का पाठ होना चाहिये।

उदाहरणस्वरूप ललिता सहस्रनाम की आयुष प्रयोग विधि इस प्रकार है कि उदया तिथि की पूर्णिमा को व्रत कर संकल्प लेकर रात्रि में चन्द्रमा के समक्ष पंचोपचार पूजन के पश्चात पूर्वाद्ध एवं उत्तराद्ध सहित ललिता सहस्रनाम का पाठ चन्द्रमा में ललिता देवी का ध्यान कर दिया जाय।

प्रश्न:—प्रातः संध्या कर्म के साथ अन्य कौन से कर्म अनिवार्य हैं?

उत्तर— यथा अधिकार वैदिक संध्या के पश्चात् तांत्रिक संध्या करनी चाहिये। अर्घ्य देते समय अर्घी का स्पर्श अंगुष्ठ द्वारा नहीं होना चाहिये। निर्धारित बीजों से भूत—शुद्धि के रूप में अनुलोम—विलोम, प्राणायाम आवश्यक है एवं लघु प्राण प्रतिष्ठा तथा त्रैतारी से पंचदश संस्कार करना एवं कुम्भक एवं मूल मंत्र एवं जालंधरबद्ध सहित कम से कम ०३ बार प्राणायाम आवश्यक है। प्रारम्भिक साधकों के लिये कम से कम मातृका न्यास तक, षोडशी से दीक्षित साधकों के लिये सम्मोहन न्यास तक करना अनिवार्य है। महापूजा करने वाले साधकों के लिये कम से कम श्रीचक्र न्यास आवश्यक है। इसके अतिरिक्त अधिक समय हो तो लघुषोढ़ा एवं महाषोढ़ा न्यास भी किये जा सकते हैं। यह वांछनीय है कि महापूजा प्रारम्भ करने से पूर्व कम

से कम ०६ माह तक श्रीचक्र न्यास तक किया जाय।

प्रश्न:—क्या न्यास मानसिक अथवा उपांशु किये जा सकते हैं? न्यास कब किये जाने चाहिये?

उत्तर— प्रारम्भ में अभ्यास के लिये कुछ माह तक सभी न्यास बोलकर अर्थात् वाचक किये जाने चाहिये। तत्पश्चात् न्यास मानसिक अथवा उपांशु किये जा सकते हैं। मानसिक न्यास में तत्त्वमुद्रा से सम्बन्धित अंग का स्पर्श निषेध है अर्थात् अंगो का स्पर्श भी मानसिक होगा। इसके लिये उच्च स्तर का ध्यान केन्द्रित होना आवश्यक है। इस कारण से उपांशु न्यास सुलभ एवं सहज होता है क्योंकि वाचक की तरह इसके साथ तत्त्वमुद्रा से अंगों का स्पर्श अनुमन्य है। न्यास संध्या, जप अथवा पूजा के अंग रूप में किये जा सकते हैं।

प्रश्न:—पूजा क्रम में जप किस स्थान पर किया जाना चाहिये?

उत्तर— संध्या के अंगरूप में न्यूनतम १० बार मूल मंत्र का जप करना अनिवार्य है। समय उपलब्ध होने पर मूल मंत्र का ०१ माला जप भी किया जा सकता है। सहस्रनाम की फलश्रुति अनुसार महापूजा उपरान्त यथाशक्ति ०१ अथवा ०३ अथवा १० माला मूल मंत्र का जप एवं उसके उपरान्त ललिता सहस्त्र स्तोत्र का पाठ सर्वोत्कृष्ट पूजाक्रम है। इसीलिये समयाभाव में प्रयास करना चाहिये कि महापूजा उपरान्त कम से कम ०१ माला मूल मंत्र का जप हो जाय एवं तत्पश्चात् सहस्त्रनाम का पाठ हो। यद्यपि समय अभाव हो तो संध्या के अंगरूप में मात्र १० बार मूलमंत्र का जप कर लिया जाय।

जप की माला स्फटिक की सर्वोत्तम होती है एवं १०८ छोटे के स्थान पर ५४ बड़े दानों की होनी चाहिये ताकि ०१ मंत्र के जप पर एक ही दाने का स्पर्श हो। जप के समय चाहे ईश्वर का चित्र भी सामने हो परन्तु बाह्य ध्यान से श्रेयस्कर होगा कि आँख बंद कर हृदय चक्र पर आंतरिक ध्यान किया जाय।

प्रश्न:—नित्या कवच पढ़ने का उचित स्थान पूजा क्रम में कहाँ पर है?

उत्तर— नित्या कवच पढ़ने के उचित स्थान के ०२ विकल्प हैं। प्रथम— संध्या के अंगरूप में किये गये मूलमंत्र के जप के पश्चात् एवं द्वितीय— महापूजा उपरान्त क्षमा प्रार्थना स्तोत्र पढ़ने के ठीक पूर्व।

प्रश्न:—पूजा क्रम के बीच में आसन छोड़ने पर क्या नियम का पालन करना होगा?

उत्तर— जल अथवा कुछ फलाहार ग्रहण करने पर मुख प्रक्षालन, हस्त प्रक्षालन, लघुशंका जाने

पर उपरोक्त के साथ पाँव धोना एवं दीर्घशंका जाने पर पूर्ण स्नान आवश्यक है। आसन पर लौटने पर आचमन एवं मूल मंत्र का न्यास एवं मूल मंत्र द्वारा जल से आसन एवं शरीर की शुद्धि की जानी चाहिये।

पूजा के मध्य में ही आसन बिना छोड़े जल ग्रहण किया जा सकता है परन्तु गिलास को मुख से स्पर्श किये बिना।

प्रश्न:–पूजा क्रम में हस्त प्रक्षालन कब अनिवार्य है?

उत्तर– अग्नि के स्पर्श उपरान्त अर्थात् दीप पूजा अथवा आरती लेने के पश्चात् हस्त प्रक्षालन अनिवार्य है। इसी प्रकार कमर से नीचे अपने शरीर का स्पर्श करने के बाद भी हस्त प्रक्षालन अनिवार्य है।

प्रश्न:–पूजा के मध्य में दीप बुझने पर क्या करना चाहिये?

उत्तर– महापूजा के दौरान ०२ दीपक इस कारण से अनिवार्य है कि कम से कम एक दीपक प्रत्येक दशा में जलता रहे क्योंकि महापूजा समय के अन्तर्गत दीप समाप्त हो जाना अशुभ माना जाता है। दीप बुझ जाने पर बत्ती नई लगाकर पुन: प्रज्वलित किया जाता है एवं विशेष ध्यान आवश्यक है कि किसी भी दशा में दोनों दीपक एक साथ न बुझने पायें।

इसी प्रकार आरती भी स्वत: जलकर समाप्त होनी चाहिये एवं पंखे आदि की हवा से बुझने से उसे उचित प्रकार से ढंक कर बचाना चाहिये।

प्रश्न:–पात्रासादन के पश्चात् पात्र गिरने की दशा में क्या करना चाहिये?

उत्तर– पात्रासादन के पश्चात् अपने स्थान से पात्रों का हिलना पूर्णतया निषेध है। पात्र का सादन उपरान्त गिर जाना उत्यन्त अशुभ माना जाता है। अत: इस हेतु विशेष सावधानी बरती जानी चाहिये फिर भी यदि त्रुटिवश पात्र गिर जाता है तो तत्काल पुन: नियमानुसार उस पात्रासादन किया जाना चाहिये।

प्रश्न:–महापूजान्तर्गत समय बचाने के लिये कौन से मंत्र छोटे किये जा सकते हैं?

उत्तर– मंदिर पूजा के प्रथम एवं अन्तिम मंत्र में त्रितारी लगाकर शेष में त्रितारी लगाने की आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार विशेष अर्घ्य पात्रासादन के अन्तिम चरण में शुद्धि संस्कार में तर्पणी को विभिन्न कलाओं से मंत्रित किया जाता है। इनमें भी प्रत्येक कला समूहों के केवल प्रथम एवं अन्तिम मंत्र के पूर्व त्रितारी लगाकर अभिमंत्रण किया जा सकता है एवं मध्य के शेष

मंत्रों में त्रितारी लगाने की आवश्यकता नहीं है। जिन साधकों को वैदिक मंत्र उच्चारण का अधिकार नहीं है वह इन कला समूह में प्रयुक्त (एवं महापूजा में अन्य स्थानों पर भी प्रयुक्त) वैदिक मंत्रों के स्थान पर अपने मूल मंत्र का प्रयोग करें।

इसी प्रकार शुद्धि संस्कार के अंत में कुण्डलिनी अधिष्ठित चिदग्नि मण्डल में "जुहोमि स्वाहा" के मंत्रों में एवं देवी के आह्वाहन मंत्रों में प्रथम एवं अन्तिम मंत्र के पूर्व मूल मंत्र लगा कर मध्य के शेष सभी मंत्र में त्रितारी का प्रयोग किया जा सकता है। ललिता सहस्त्रनाम अथवा खड्गमाला का अर्चन त्रैतारी लगाकर करना चाहिये अथवा समयाभाव में केवल शक्ति बीज लगाकर अथवा केवल प्रथम एवं अन्तिम नाम में त्रितारी लगाकर करना चाहिये। त्रिशती अर्चन अनिवार्यत: त्रैतारी लगाकर करना चाहिये।

प्रश्न:—बलिदान पात्र की सामाग्री का निस्तारण किस प्रकार किया जाना चाहिये?

उत्तर— बलिदान पात्र एवं उसकी सामग्री अशुद्ध मानी जाती है एवं बलिदान क्रिया के पश्चात् शीघ्रातिशीघ्र उसको निवास स्थान की सीमाओं के बाहर फेंक दिया जाना चाहिये एवं पात्र के स्पर्श उपरान्त हस्त प्रक्षालन करना चाहिये।

प्रश्न:—सौन्दर्य लहरी का पाठ कब किया जाना चाहिये?

उत्तर— प्रारम्भ में अभ्यास हेतु कुछ माह तक नित्य सौन्दर्य लहरी का सम्पूर्ण पाठ किया जाना चाहिये। इस पाठ का सर्वोत्तम स्थान महापूजा अन्तर्गत ललिता सहस्त्रनाम पाठ के ठीक पश्चात् होता है क्योंकि तत्समय समस्त देवताओं का मण्डल आवाहित रहता है एवं तत्समय तक विसर्जन नहीं हुआ रहता है।

अभ्यास के बाद उपलब्ध समय को देखते हुये प्रत्येक शुक्रवार को ही सौन्दर्य लहरी का पाठ (यदि समयाभाव हो तो प्रत्येक शुक्रवार को केवल श्लोक संख्या ०१ से ४१ तक जिसे कि आनन्द लहरी कहते हैं का पाठ किया जा सकता है) किया जाना चाहिये। इसी प्रकार पूर्णिमा को रात्रिव्यापिनी तिथि अथवा उदया तिथि पर सम्पूर्ण सौन्दर्य लहरी का पाठ किया जा सकता है।

प्रश्न:—तांत्रिक पर्वो, अक्षय तृतीया एवं सूर्य संक्रान्ति पर क्या किया जाना चाहिये?

उत्तर— श्रीकरी, मोहिनी आदि परिभाषित तांत्रिक पर्वो में से नित्यामिलन पर्व सबसे महत्वपूर्ण है। यह पर्व तब घटित होता है जब दिन नित्या एवं तिथिनित्या किसी दिवस पर एक समान हो जाय।

नित्यामिलन पर यथासमय महापूजा अन्तर्गत सहस्त्रनाम एवं त्रिशती अर्चन किये जाने चाहिये एवं समय अभाव हो तो केवल त्रिशती अर्चन कर लेना चाहिये।

सूर्य संक्रान्ति के पर्व का महत्त्व तभी है जब परिभाषित पुण्यकाल के समय ही पूजा करने का अवसर प्राप्त हो। यदि पुण्यकाल में महापूजा हो रही हो तो यथासमय सहस्त्रनाम अथवा त्रिशति अर्चन किया जाना चाहिये एवं यदि पुण्यकाल के समय तक यंत्र पूजन समाप्त हो चुका हो तो फिर समय की उपलब्धतानुसार सूर्य संक्रान्ति पर्व के निमित्त सहस्त्रनाम एवं त्रिशति पाठ अतिरिक्त रूप से किया जाना चाहिये।

अक्षय तृतीया में भी महापूजा अन्तर्गत सहस्रनाम अर्चन एवं त्रिशति अर्चन किया जाना चाहिये।

दशहरे के दिन शमी एवं अपराजिता पूजन (पंच उपचार) किया जाना चाहिये क्योंकि शमी पत्र एवं अपराजिता विशेष रूप से श्रीविद्या पूजन में प्रयोज्य है।

प्रश्न:—महाशिवरात्रि में क्या पूजन किया जाना चाहिये?

उत्तर— महाशिवरात्रि का पर्व भी उपरोक्त अनुसार श्रीविद्या के रात्रि पर्वो में से कृष्ण चतुर्दशी का पर्व है परन्तु पूरे वर्ष के प्रत्येक माह की कृष्ण चतुर्दशी में से सबसे महत्वपूर्ण फागुन मास की कृष्ण चतुर्दशी महाशिवरात्रि के रूप में होती है। यथाशक्ति चारों याम की महापूजा, सहस्रनाम एवं त्रिशती अर्चन एवं यथा संख्या मूल मंत्र का जप होना चाहिये। प्रत्येक याम में जप के पश्चात् विभिन्न स्तोत्र के पाठ का भी विधान है, उदाहरण के लिए सौन्दर्य लहरी, शिव महिम्न: स्तोत्र पाठ किया जा सकता है। प्रत्येक याम की परिभषा निम्न प्रकार है—

१. सायंकाल ६.०० बजे से ९.०० बजे तक

२. रात्रि ९.०० बजे से १२.०० बजे तक

३. रात्रि १२.०० बजे से ३.०० बजे तक

४. प्रात: ३.०० बजे के पश्चात

पहले तीनों यामों की महापूजा में पात्र उद्वासन नहीं किया जायेगा अर्थात् पात्रासादन, आवाहन चतु:षष्टि उपचार पूजा केवल एक बार की जायेगी एवं अन्तिम याम के समय ही महानैवेद्य, विस्तृत पुष्पाञ्जलि, विसर्जन एवं पात्र उद्वासन किया जायेगा। मध्य के शेष याम में केवल चतुरायतन

पूजा, लयांग पूजा, षडंग अर्चनम, नित्यादेवी पूजा, गुरूमण्डल अर्चनम्, नवआवरण पूजा, पंचपंचिका पूजा, षड्आधार पूजा, बाला, अन्नपूर्णा, अश्वारूढ़ा पूजा, दण्डनाथानाम अर्चन, मंत्रिणीनाम अर्चन, ललितानाम अर्चन उपरान्त सूक्ष्म नैवेद्य आरती, समष्टि मंत्र द्वारा पुष्पांजलि की जायेगी।

रात्रि ३.०० बजे के पश्चात् चतुर्थयाम की पूजा समाप्त कर पुन: अगले दिन की महापूजा की जायेगी।

प्रश्न:—रात्रि के लिए आवश्यक पूजा कर्म क्या है?

उत्तर— यंत्र को सुगन्धित जल से स्नान कराते—कराते त्रिशति का पाठ किया जा सकता है एवं श्रीयंत्र को इत्र लगाकर समष्टि पत्र से पुष्पांजलि एवं धूप दिखानी चाहिए, तत्पश्चात् यथाशक्ति रात्रि देवी की २७ अथवा ५४ बार अथवा ०१ माला जप किया जाना चाहिये। जप के पूर्व ०३ बार विघ्नउत्सारण मंत्र एवं जप के पश्चात् दशांश संख्या में अंग, उपांग एवं प्रत्यंग जप करना चाहिये।

प्रश्न:—चंदन, रोली इत्यादि किस प्रकार चढ़ाना चाहिये?

उत्तर— अर्क विनायक एवं श्रीचक्र से यदि चंदन साफ करने में कठिनाई हो तो चंदन, रोली आदि पुष्प पर रखकर चढ़ाया जा सकता है। खस की घास का ब्रश बनाकर यंत्र को प्रत्येक पूर्णिमा पर साफ करने का भी विधान है।

अन्य ध्यान देने योग्य बिन्दु –

१. चाँदी अथवा स्वर्ण के पुष्प अथवा बेलपत्र जल से धोकर चढ़ाये जा सकते हैं।

२. स्वर्ण एवं रत्नों के आभूषण बिना धोये पुन: प्रयोग हो सकते है।

३. शुद्ध रेशम की मालायें पुन: प्रयोग हो सकती है।

४. ४ अथवा ५ पत्रों वाले बेलपत्र अत्यन्त शुभ होते है।

५. जिस दिन महापूजा न की जा सके उसके स्थान पर कम से कम श्रीचक्र न्यास, खड़ग माला स्तोत्र एवं यथासमय बालामानस पूजा स्तोत्र का पाठ अवश्य किया जाना चाहिये।

यदि समय न हो तो महापूजा के स्थान पर १० माला मूल मंत्र का जप उचित होता है।

श्रीविद्यार्णव में श्रीविद्यात्तव्य एवं श्रीविद्यासाधना

आचार्य गोविन्द चन्द्र पाण्डेय

आत्मविद्यां महाविद्यां श्रीविद्यां हृदि भावयन्।
श्रीमन्तं सद्गुरुं वन्दे दत्तात्रेयमिवापरम्।।

महामहिम श्रीगुरु महाराज के आदेश से मैं इन पंक्तियों को लिखने का साहस कर रहा हूँ। तन्त्रशास्त्र जैसे दुर्बोध विषय की रहस्यात्मक बातों पर उन्होंने स्वयं यथापेक्षित अपनी विवृति में प्रकाश डाला है। इस संक्षिप्त भूमिका का प्रयास ऐसा है, जैसे कोई सागर में अवगाहन के पूर्व उसके विषय में बहिरङ्ग जानकारी प्राप्त कर लेना चाहता हो। तन्त्रविषयक जिज्ञासा अनेक सन्देहों से घिरी हुई है, इन सन्देहों पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है। ऐसा नहीं है कि इस तरह के प्रयास पहले नहीं किये गये हैं। आर्थर ऐवेलन की अंग्रेजी में अनेक प्रसिद्ध पुस्तकें तन्त्रशास्त्र का परिचय देती हैं और भ्रान्तियों का निराकरण करती हैं। विनयतोष भट्टाचार्य और शशिभूषण दासगुप्त ने बौद्ध तन्त्र पर विशद ग्रन्थ रचे हैं। महामहोपाध्याय डॉ० गोपीनाथ कविराज जी ने तन्त्र पर अपनी कृतियों में विस्तृत प्रकाश डाला है। उनकी रचनाएँ अपनी गम्भीरता, पाण्डित्य और प्रामाणिकता के लिए सुप्रसिद्ध हैं और विद्वान् जिज्ञासुओं को मार्ग दिखलाती हैं। यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे उनसे कुछ सुनने का अवसर प्राप्त हुआ। उनसे तथा अन्य ज्ञानियों से जो मैंने सुना, उसे श्रीगुरु महाराज से उपलब्ध ज्ञान पर टिप्पणी मानकर जिन निष्कर्षों पर मैं पहुँचा हूँ, उसे ऐतिहासिक अनुसन्धान से गुम्फित कर अत्यन्त संक्षेप में यत्किञ्चित् निवेदित कर रहा हूँ। यह भूमिका मूल ग्रन्थ के बाहरी सोपान के समान है।

तन्त्र शब्द का प्रयोग जहाँ एक ओर सर्वांगीण शास्त्र के लिए होता है, वहीं उसका विशेष शास्त्र के रूप में भी प्रयोग होता है **'आसुरये तन्त्रं प्रोवाच'**। यहाँ तन्त्रशब्द सांख्यशास्त्र के लिए प्रयुक्त हुआ है, किन्तु प्रायः तन्त्र शब्द शैव, शाक्त आदि सम्प्रदायों के आगमशास्त्र के लिए प्रयुक्त होता है। अभिनवगुप्तपादाचार्य ने **तन्त्रालोक** अथवा **तन्त्रसार** में तन्त्र का ऐसा ही प्रयोग किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से तृतीय शताब्दी ई० से बौद्ध तान्त्रिक ग्रन्थ मिलते हैं, पाँचवीं शताब्दी से पाञ्चरात्र आगमों की पाण्डुलिपि होने का प्रमाण उपलब्ध होता है, छठी शताब्दी से शैव आगम की संहिताएँ उपलब्ध होती हैं, आठवीं शताब्दी से काश्मीर शैव सम्प्रदायों का प्रमाण मिलता है। **ब्रह्माण्ड पुराण** और **मार्कण्डेय पुराणों** में शाक्त आगमों के ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। इन सब

प्रमाणों से इतिहासकारों में यह मत अब प्राय: स्वीकृत है कि तांत्रिक आगमिक साहित्य कम से कम दो हजार वर्ष पुराना है।

यह कालगणना इस समय विद्यमान तांत्रिक साहित्य के विषय में है, तांत्रिक परम्परा के विषय में नहीं। भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में परम्परा और लिखित ग्रन्थों में भेद करना आवश्यक है। चिरकाल तक जो परम्पराएँ मौखिक रूप से विद्यमान थीं, उनके कुछ लिखित ग्रन्थ बहुत बाद में प्रचलित हुए। उदाहरण के लिए **अष्टाध्यायी** अथवा **कौटिलीय अर्थशास्त्र** अथवा भरत के **नाट्यशास्त्र** के पूर्ववर्ती आचार्यों के कोई ग्रन्थ अब शेष नहीं हैं। वैदिक वाङ्मय के भी विशाल अंश पतञ्जलि के समय तक लुप्त हो गये थे। यह निदर्शनमात्र है, वस्तुत: तांत्रिक परम्परा वैदिक परम्परा से मूलत: अलग नहीं थी, उसका विकास वैदिक परम्परा के अन्दर ही हुआ और वह उतनी ही प्राचीन है, जितनी कि वैदिक परम्परा। वेद अनादि हैं, वैसे ही आगम भी अनादि हैं। निगम और आगम में यही अन्तर है कि निगम को अपौरुषेय माना गया है और आगम का प्रवर्तन ईश्वर के द्वारा होने से वे पौरुषेय माने जाते हैं। बौद्ध और जैन भी बुद्ध और जिन को ईश्वर के समान सर्वज्ञ मानकर उनके वचनों को आगम मानते हैं। तन्त्रों के अनुसार सृष्टि के प्रति उन्मुख परमेश्वर से जीवों के कल्याण के लिए जो ज्ञान पहले नाद के रूप में प्रकट हुआ, वही पीछे शास्त्र के रूप में अवधारित हुआ। इस प्रकार पाँच मुखों या स्रोतों से नाना ज्ञान, शास्त्र और तन्त्रों की धाराएँ प्रवर्तित हुईं। इसका सारांश यही है कि तान्त्रिक आगम परमेश्वर के वचन हैं और वैदिक आम्नाय के समानान्तर हैं। किन्तु यह स्मरणीय है कि न्याय और वेदान्त के अनुसार वेद भी ईश्वरोक्त ही हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि अत्यन्त प्राचीन काल से मनुष्य नाना प्रकार से देवोपासना में लगा रहा है। तन्त्रशास्त्र मूलत: उपासना-शास्त्र है और वह स्वरूपत: अनादि मानव की धार्मिक अन्वेषणा को अपने में समेटे हुए है। इस बात को न समझ कर बहुत से आधुनिक आलोचक तन्त्रशास्त्र पर Primitive या प्रागैतिहासिक जनजातीय होने का दोषारोपण करते हैं। वस्तुत: यह दूषण न होकर भूषण ही है। दूषण यह उनके लिए है, जो मनुष्यत्व का ही विकास मानते हैं और सच्चे धर्म का आरम्भ अपने अर्वाचीन पैगम्बरों या नबियों से स्वीकारते हैं। अतिप्राचीन और अत्यन्त विविध मानव धार्मिक परम्पराओं में कतिपय सुधारों से नये–नये मतों और धर्मों का प्रचलन अवश्य हुआ है, किन्तु सनातन धर्म की परम्परा वैसे ही अविच्छिन्न और विश्वजनीन रही है, जैसे विज्ञान और प्रविधि की। यह सनातन और सार्वभौम परम्परा ही

तान्त्रिक परम्परा के रूप में सुरक्षित है। इस परम्परा के असंख्य भेद मिलते हैं और बहुधा विभिन्न सम्प्रदायों के अनुगामी साम्प्रदायिक या सांस्कृतिक विशेषताओं को ही तन्त्र की मूल विशेषता समझ लेते हैं। इस लिए सर्वप्रथम तन्त्र के ऐतिहासिक भेदों के पीछे विद्यमान उसके व्यापक तत्त्व को देखना आवश्यक है।

मनुष्यमात्र अन्य प्राणियों के समान समीहा से प्रेरित होकर नाना विषयों का अनुधावन करता है, किन्तु विवेकी होने के कारण वह उन विषयों के साध्य, साधन, ज्ञान के द्वारा उनके उपादान और परिहार में समर्थ होता है। सबके अनुभवगोचर सुख-दु:ख और उनके लौकिक साधन इस कोटि में आते हैं। किन्तु सभी विचारशील व्यक्ति यह समझ लेते हैं कि उनकी सफलता और असफलता में अदृश्य कारण भी होते हैं, जिन पर उनका कोई वश नहीं होता। बहुत से विचारकों ने मानव जीवन के नियामक अदृष्ट हेतुओं को काल, स्वभाव, नियति, यदृच्छा अथवा कर्म के रूप में अवधारित किया है। किन्तु इन सभी मतों से अधिक प्रबल यह धारणा रही है कि देवता अथवा ईश्वर की इच्छा ही अन्ततोगत्वा मानव भाग्य का निर्णय करती है, जो कर्म को मानते हैं, उन्हें भी कर्म-विधान के व्यवस्थापक और अध्यक्ष के रूपों में ईश्वर की आवश्यकता होती है। जो संयोगमात्र को चरम हेतु स्वीकार करते हैं, उन्हें भी हेतुओं के विचित्र संयोग के नियामक की आवश्यकता होती है। काल केवल क्रम ज्ञापित करता है। उस क्रम के विषयों का निर्धारण नहीं करता। स्वभाव और परभाव जिस समष्टि के अंग हैं, उसकी अन्तर्व्यवस्था के लिए भी एक नियामक हेतु की आवश्यकता होती है। मनुष्य बुद्धिपूर्वक कार्य करता है, किन्तु उसकी बुद्धि के सीमित होने से उसकी स्वतन्त्रता अपने कार्य के लिए पूरी तरह से उत्तरदायी नहीं कही जा सकती है। इसीलिए मानव कर्म के सन्दर्भ में कर्तृत्व के साथ साथ अन्य-प्रयोजकत्व भी स्वीकार किया गया है। संक्षेप में यदि मानव-जीवन और मानव-विश्व में कोई नैतिक व्यवस्था है, तो उसका चरम हेतु ईश्वर की इच्छा हो सकती है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में यह बात संक्षेप में कह दी गयी है और यह उपनिषद् एक साथ ही वेदान्त भी है और सिद्धान्तत: मूलागम भी।

इसीलिए आदिकाल से जीवन को सुखी बनाने के लिए मनुष्य किसी न किसी रूप में देवोपासना में लगा रहा है। यह उपासना ही तन्त्र का आरम्भ, मध्य और चरम बिन्दु है। यह प्रश्न हो सकता है कि— यदि उपासना सर्वविदित है और सर्वत्र प्रचलित है और वही तन्त्र का सार है, तो पृथक् रूप से तन्त्रशास्त्र की क्या आवश्यकता है? इसका उत्तर यह है कि—मानव जीवन के सभी आवश्यक व्यापार स्वत: या सामाजिक शिक्षा के अनुसार चलते रहते हैं। किन्तु वे वैज्ञानिक

नहीं होते और उनका विज्ञान विशिष्ट ज्ञान होता है। सभी सांस लेते हैं, किन्तु उसके प्रत्यक्ष और परोक्ष नियमों को नहीं जानते। प्राणायाम उसके विशिष्ट विज्ञान पर आधारित है। सभी उठते, बैठते, दौड़ते हैं, किन्तु व्यायाम का विज्ञान उन्हीं क्रियाओं को सही रूप दे सकता है। तत्त्व-विचार सभी एक सीमा तक करते हैं, किन्तु न्यायविद्या के ज्ञान से वह विचार प्रमाणानुसारी हो जाता है। ऐसे ही ईश्वर का चिन्तन, भजन, प्रार्थना आदि सभी करते हैं, किन्तु उपासना का भी एक विज्ञान है, वही तन्त्रशास्त्र है, जिसमें उपासना के तात्त्विक आधार और मूलभूत क्रियाओं का व्यवस्थित रूप से प्रतिपादन मिलता है। यह एक सनातन विद्या है, जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से ज्ञानियों की परम्परा के रूप में युग-युग से चली आ रही है। इसके कुछ अंश ग्रन्थों के रूप में भी उपलब्ध होते हैं, किन्तु बहुत से अंश लुप्तप्राय हैं। उपलब्ध ग्रन्थ भी अधिकांश में अप्रकाशित हैं। इस सम्बन्ध में महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज का तान्त्रिक साहित्य द्रष्टव्य है। इसके अतिरिक्त शैव, पाञ्चरात्र और बौद्ध आगमों की अनेक विस्तृत सूचियाँ प्रकाशित हुयी हैं। यह स्मरणीय है कि श्रीविद्या अद्वैतपरक शाक्त आगम परम्परा के अन्तर्गत है। तत्त्वत: इसका निकट सम्बन्ध अद्वैतपरक भैरव तन्त्रों से है। अद्वैतपरक ६४ भैरव तन्त्र प्रसिद्ध हैं। स्वच्छन्दतन्त्र, मालिनीविजय, त्रिशिरोभैरव आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ऐतिहासिक युगीन प्रपंचसार, शारदातिलक, त्रिपुरारहस्य, कामकलाविलास, श्रीविद्यार्णव आदि इसी परम्परा में हैं।

तन्त्रशास्त्र के कुछ मूलभूत तत्त्वों का संक्षेप में विचार करना उपयोगी होगा। यहाँ पर अद्वैतपरक शाक्त आगमिक सिद्धान्तों को ही केन्द्र में रख कर विचार किया जायेगा, क्योंकि श्रीविद्यासम्प्रदाय या त्रैपुरदर्शन अद्वैतपरक हैं। वर्तमान आलोचनाप्रधान युग में इस शास्त्र पर आस्था के लिए इसके मौलिक सिद्धान्तों की ही पहले जिज्ञासा उत्पन्न होती है। तन्त्र का आधार यह सिद्धान्त है कि–

१. चैतन्य या संविद् ही परमार्थ है, वही **एकमेवाद्वितीयं सत्** है, वही आत्मा, परमात्मा, परब्रह्म, परमेश्वर है।

२. 'चैतन्य स्वरूपत: शक्ति से अभिन्न है' इस शास्त्र का यह विशिष्ट सिद्धान्त है। पराचिति, पराशक्ति, परसंवित्, चिच्छक्ति, ये सब एक परमतत्त्व के वाचक हैं।

३. ईश्वर और जीव उसी अद्वय चैतन्य शक्ति के रूप हैं। ब्रह्मात्मैक्य विज्ञान ही पराविद्या है।

४. जगत् चिच्छक्ति का विवर्त है, उसका नानात्व चैतन्य पर अध्यस्त आभास मात्र है।

५. शब्द से सृष्टि होती है।

६. पञ्चकृत्यकारी परमेश्वरात्मिका चिति शक्ति के अनुग्रह से ही मनुष्य स्वरूप को पहचानता है और उसके लिए आगम शास्त्र और साधनों की परम्परा का प्रवर्तन हुआ है। इस परम्परा के बहुत से भेद हैं, क्योंकि मनुष्यों की रुचि और सामर्थ्य के अनुसार उनमें अधिकार भेद मिलता है। विभिन्न अधिकारियों के लिए विभिन्न तांत्रिक परम्पराएँ हैं। द्वैतपरक, द्वैताद्वैतपरक, और अद्वैतपरक। इनमें प्रत्येक में उपास्य के नाम-रूप-भेद से अनेक भेद हैं। दश महाविद्याओं में श्री, ललिता अथवा त्रिपुरा नाम से प्रसिद्ध देवी की उपासना का सम्प्रदाय ही श्रीविद्या सम्प्रदाय है, जिसका भगवत्पाद शङ्कराचार्य ने स्वीकार और प्रचार किया। समस्त साधनप्रपंच का पर्यवसान चैतन्य की स्वरूप विश्रान्ति, पूर्णाहन्ता की प्राप्ति अथवा परासंविद् की अपरोक्षानुभूति में होता है। यह चरम परिणति केवल निजी मुक्ति या कैवल्य नहीं है, अपितु सर्वमुक्ति की यात्रा में साधक का परमेश्वर की कृपारश्मि के साथ समवेत होकर तदनुरूप पद पर अवस्थित होना है। यह सर्वमुक्ति का सन्दर्भ बहुधा प्राचीन विवरणों में अनुक्तप्राय है, किन्तु यत्र-तत्र जैसे योगभाष्य या सिद्धान्तलेशसंग्रह आदि में इसका संकेत मिलता है। बौद्ध और जैन दर्शनों में यह स्पष्ट है और अनेक आधुनिक मनीषियों ने इसका प्रतिपादन किया है।

७. मन्त्र के द्वारा सिद्धि प्राप्त होती है। इस प्रसंग में नाना मुद्राओं और न्यासों का उपयोग। गुरुपूजा का परम महत्त्व।

८. सृष्टि के प्रसंग में नाना आगमोक्त ३६ तत्त्वों का अनुमोदन एवं सृष्टि और संहार का यंत्रात्मक परिलेखन और भावना।

९. कुण्डलिनीयोग का अन्तरङ्ग उपाय के रूप में उपयोग।

१० विचारजन्य ज्ञान, भावना और सहज निर्विकल्प में विश्रान्ति।

इनके अतिरिक्त शाक्त साधना में आचारसंहिता का भी वैशिष्ट्य है, जिसमें स्त्रियों का सम्मान एक विशेष स्थान रखता है **'विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः, स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु'**।

इन मूल तत्त्वों का आधार आगम ही है। ये आगम सिद्ध सत्य हैं, जो महापुरुषों के लिए स्वानुभूतिसिद्ध भी हैं। प्रकृष्ट साधकों को इनका कुछ आभास उपलब्ध होता, इससे उनकी श्रद्धा

दृढ़ होती है। प्रत्यक्ष और प्रत्यक्षमूलक तर्क के गोचर न होने पर भी ये आगमानुसारी सत्तर्क से और विचार से बुद्धि में आरूढ होते हैं और विवेकानुसारी ध्यान, भावना और समाधि से इनका बोध स्फुटतर होता है, तो भी विपरीत भावना और असम्भावना के निरास के लिए न्यायानुसारी विचार उपयोगी होता है। इसी दृष्टि से यहाँ इन तत्त्वों के विषय में कुछ युक्तियाँ प्रस्तुत की जा रही हैं।

परमार्थ की चैतन्यात्मकता का सिद्धान्त अनेक प्रतिपक्षों से घिरा हुआ है। आजकल तो जडवाद ही सर्वत्र प्रचलित है, जिसके अनुसार चैतन्य भौतिक देह में एक परतन्त्र प्रतिभास मात्र है। इस दृष्टि से चैतन्य शब्द वस्तु सत्ता का वाचक नहीं है, प्रत्युत दैविक व्यवहार की कुछ विशेषताओं का वाचक है। संगणकीय यंत्र मनुष्य का अधिकाधिक अनुकरण करने में लगे हैं और बहुत से वैज्ञानिक आशा करते हैं कि एक दिन इन यान्त्रिक मनुष्यों और जैविक मनुष्यों में अन्तर नहीं किया जा सकेगा। इस प्रकार की युक्तियों का अन्तिम उत्तर यह है कि जिन विक्रियात्मक व्यावहारिक वृत्तियों को यहाँ चैतन्य कहा जा रहा है, वे सभी चैतन्य के विषयमात्र हैं। चैतन्य को पूर्वसिद्ध माने बिना किसी भी विषय का पता नहीं लग सकता। चैतन्य किसी भी विषय से अभिन्न नहीं है, क्योंकि विषय और विषयी का भेद अन्धकार और प्रकाश के समान आत्यन्तिक है। इस प्रकार चैतन्य की देह से अतिरिक्तता प्रायः सभी अभौतिकवादी प्राचीन दर्शनों में किसी न किसी रूप में स्वीकृत है।

इस प्रकार चैतन्य की सत्ता निर्विवाद है, क्योंकि उसके विषय में विवाद भी विवादकर्ता के रूप में उसे सिद्ध करता है। चैतन्य को एक पृथक् धर्म स्वीकार करने पर भी उसे बौद्ध दार्शनिक चित्त की वृत्ति के रूप में अनित्य मानते हैं। कुछ अन्य आस्तिक दर्शन भी आत्मा को चैतन्य स्वरूप न मानकर उसे चैतन्य से भिन्न द्रव्य मानते हैं, जिसमें चैतन्य की सापेक्ष अभिव्यक्ति होती है। चैतन्य को अनित्य और परतन्त्र मानने पर यह अनित्य और दृश्य जगत् का अंग बन जायेगा और स्वयं विषयि-चैतन्य की अपेक्षा करेगा। विशुद्ध द्रष्टा के रूप में साक्षी चैतन्य को इसीलिए सांख्य दर्शन ने चित्तवृत्तियों से पृथक् स्वीकार किया है। बौद्ध दर्शन में विज्ञप्तिमात्रता वस्तुतः इसी प्रकार की है।

विषयों और विषयकार चित्त से पृथक् चिति शक्ति के विषय में यह मानना कि वह शक्तिरहित है, एक प्रकार के कैवल्य मार्ग में ही उपयोगी है। उससे पारमार्थिक चिति शक्ति अकुण्ठित रहती है। यह बात परमर्षि कपिल के आसुरि को उपदेश देने से दृष्टान्तित होती है और

३६ तत्त्वों के सृष्टि संहार क्रम में इसका समाधान हो जाता है। वस्तुत: प्राकृत जगत् की सृष्टि के पीछे जो सर्वज्ञ चैतन्य की शक्ति की भूमिका नहीं देख पाते, उसके लिए जड जगत् की क्रियाओं और रचनाओं की सार्थकता उतनी ही दुरूह रहती है, जितनी क्रियामात्र का प्रथम आरम्भ। जागतिक रचना की सार्थकता, साध्य-साधन का अद्‌भुत संयोग, मानव जीवन में कर्मफल नियम की व्याप्ति, वाक् और ज्ञान की अनादि परम्परा इत्यादि हेतु भी सृष्टि के मूल में सर्वज्ञ चेतनशक्ति को सिद्ध करते हैं। इस प्रसङ्ग में भगवत्पाद का सौत्रान्तिकों का, सांख्यदर्शन का और वैशेषिक दर्शन के परमाणुवाद का दुष्परिहार खण्डन आलोच्य है। वसुबन्धु का परमाणुवाद का खण्डन भी सटीक है।

चैतन्य की स्वतन्त्र और नित्य सत्ता सिद्धि होने पर भी यह संदिग्ध रहता है कि क्या चैतन्य ही अद्वय रूप से परमार्थ है? चैतन्य का भौतिक सत्ता में विलयन तो चैतन्य और जडता के स्वरूप-भेद से ही खण्डित हो जाता है। चैतन्य का सब विषयों से पृथक् अस्तित्व दृग्-दृश्य विवेक के अभ्यास से स्पष्ट हो जाता है, तो भी यह संशय बना रहता है कि विषयी रूप चैतन्य क्या विषयापेक्ष नहीं है? और क्या विषय जगत् चैतन्य निरपेक्ष नहीं है? अथवा क्या चेतन आत्मा ही नाना नहीं है? अनेक विचारक यह मानते हैं कि ज्ञानमात्र सविषय होता है। इसका उत्तर यह है कि विषय अय:शलाकावत् स्वत:प्रदत्त नहीं होते हैं, वे विकल्प के द्वारा ही अन्यापोहपूर्वक ही अध्यवसित किये जा सकते हैं। जहाँ तक प्रत्यक्ष विषयों का प्रश्न है, जिन्हें कथञ्चित् विकल्प निरपेक्ष माना जा सकता है, उनके शास्त्रविदित पाँच रूपों में स्थूल, सूक्ष्म, तान्मात्रिक और गुणात्मक रूपों की आधारभूत सत्ता, अर्थवत्त्वरूप होती है, जो कि स्वतन्त्र न होकर चैतन्यसापेक्ष होती है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि विषयों के ग्राह्य रूप भी उनके अध्यवसेय रूपों के समान चैतन्यनिरपेक्ष नहीं होते। यद्यपि इस पूर्वापेक्षित चैतन्य को व्यक्तिगत चित्त तक सीमित नहीं रखना चाहिए। ग्राह्य अर्थों की सृष्टि ईश्वर चैतन्य की अधीन शक्ति से आपेक्षिकतया होती है। विकल्प विषयों में भी वाचिक परम्परा और अतिवैयक्तिक महत्तत्त्व की भूमिका होती है। इस पक्ष का विवरण वाक्यपदीय में प्राप्त होता है। इसके एक अंश का प्रकारान्तर से प्रतिपादन दिङ्‌नाग ने भी किया है। अभिनवगुप्त की विवृतिविमर्शिनी में भी विज्ञानवाद के इस पक्ष का सापेक्ष अनुमोदन मिलता है। त्रिपुरारहस्य ज्ञान खण्ड में भी संविद्-संवेद्य-सम्बन्ध के विषय में उक्तिसादृश्य देखा जा सकता है।

इस प्रकार विषयमात्र स्वतन्त्र स्वभाव से शून्य व्यावहारिक आभासमात्र होता है, जो

चैतन्यार्थक, चैतन्यसाक्षिक, चैतन्यविकल्पित होता है। सर्वत्र चैतन्य ही 'भा' रूप में प्रसिद्ध होता है। उसी 'भा' में सब विषय निमग्न होते हैं, जैसा अभिनवगुप्तपाद ने स्पष्ट किया है। सभी आभास आत्मप्रत्ययविमर्श में ही स्वरूप-विश्रान्ति पाते हैं। इस सहज विमर्शात्मक प्रसिद्धि के अतिरिक्त जो विषयों में पृथक्ता, ठोसपन स्वभाव आदि के रूप में सत्ता प्रतीत होती है, वह आभास या 'भा' मात्र ही है। जब तक मनुष्य की आत्मबुद्धि देह, इन्द्रिय आदि में अध्यस्त रहती है, जब तक वह इन विषयों में अपनी सत्ता अवधारित करता है, तब तक उसे बाह्य विषय भी ठोस सत्य प्रतीत होते हैं। जैसे-जैसे आत्मज्ञान का विकास होता है, वैसे वैसे जगत् का रूप भी बदल जाता है। **'चैतन्यम् आत्मा'** (शिवसूत्र)– यही मूलसूत्र है।

चैतन्य का स्वरूप सांख्य में निरूपित सर्वशक्तिरहित नहीं है। वास्तव में चैतन्य का स्वरूप ही स्वप्रकाशता है। यह स्वप्रकाशता भी वैसी ही नहीं है, जैसी बौद्धों का स्वसंवेदन, जो ज्ञानमात्र में व्याप्त रहता है। विषय ज्ञान के समय भी ज्ञान में जो स्वसंवेदन रहता है, वह उसकी एक अन्यून कला है। यह स्वप्रकाशता विमर्श अथवा परामर्श के द्वारा पूर्णता को प्राप्त होती है। वास्तविकता तो यह है कि प्रकाश और विमर्श का अभेद ही संवित् है। चैतन्य और उसकी विमर्श शक्ति जिससे वह अपने को पहचानता और प्रकाशित करता है, दो अलग-अलग तत्त्व नहीं हैं, वे एक ही तत्त्व के दो पक्ष हैं। इसी लिए कहा गया है कि **'शिवशक्तिरिति ह्येकतत्त्वमाहुर्मनीषिणः'**। इच्छा, ध्यान और क्रिया इसी शक्ति के तीन पर्व हैं। ये तीनों पर्व एक स्वातन्त्र्य शक्ति के हैं। उसी का परतन्त्ररूप मायाशक्ति है, जो अव्यक्त और व्यक्त प्रकृति के रूप में जगत् की सृष्टि करती है और स्वरूप-संकोच के द्वारा अणुभाव को प्राप्त जीव को बन्धन में डालती है।

इस प्रसंग में यह स्मरणीय है कि आगमशास्त्र के प्रसिद्ध ३६ तत्त्व सांख्य के २५ तत्त्वों के अतिरिक्त माया और उसके कंचुक एव शिव-शक्ति, सदाशिव, ईश्वर और सद्विद्या रूपी पाँच तत्त्वों के समावेश से सम्पूर्ण होते हैं।

चैतन्य शक्ति के अद्वैतवाद को समझने के लिए इस प्रकार जडवाद, शून्यवाद, भेदवाद, स्वभाववाद, यदृच्छावाद आदि विपरीत मतों की अनुपपन्नता और अशेष सृष्टि में स्थित अद्वय चितिशक्ति की उपपन्नता एवम् आत्मरूप से आबाल-गोपाल प्रसिद्धि, जो विचार से गहरी होती जाती है, उसको समझना आवश्यक है।

तन्त्र का यह प्रमुख सिद्धान्त है कि वाचक से ही वाच्य की सृष्टि होती है। वाक् तत्त्व केवल ध्वनि रूप वैखरी तक ही सीमित नहीं है। ध्वन्यात्मक वाक् के पीछे विचारात्मक वाक्

रहती है। यही कारण है कि नाना भाषाओं का परस्पर अनुवाद किया जा सकता है, क्योंकि विचारों में विश्वजनीनता होती है। इस मध्यमा वाक् के ऊपर पश्यन्ती वाक् होती है। यहाँ वाक् अर्थ को वैसे ही प्रकाशित करती है, जैसे प्रातिभ साक्षात्कार। यदि मध्यमा के स्तर पर विकल्प और प्रत्यक्ष का अभेद यह सूचित करता है कि विचार्य विषय विचार से अलग नहीं किये जा सकते, तो पश्यन्ती के स्तर पर यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रतिभा से विषय का अभिन्नतया आविर्भाव होता है। वाक् के ये तीनों स्तर अविद्यागत जीव से सम्बद्ध होने पर वस्तुसत्ता से सम्पन्न विषयाकार से जुड़े रहते हैं। किन्तु परावाक् जो संवित् से अभिन्न है, उसमें इच्छा और सृष्टि का भेद नहीं रहता। इसलिए यह कहा जाता है कि शब्द से सृष्टि होती है। यह शब्द मानवीय शब्द न होकर ईश्वरीय शब्द है, अपितु यह भी कहा जा सकता है कि सिद्ध मनुष्यों के शब्दों में भी इस प्रकार की शक्ति होती है। वसुबन्धु ने विज्ञानवाद की सिद्धि के लिए यह प्रमाण दिया है कि ऋषियों के शाप से अरण्य तक भस्म हो गये थे।

तन्त्रशास्त्र की पारिभाषिक पदावली के अनुसार सृष्टि के प्रति उन्मुख शिव-शक्तिसामरस्य रूपी बिन्दु के स्फुरण से नाद का उद्‌भव होता है। नाद शून्य में प्रतिध्वन्यात्मक शब्द और ज्योति के रूप में होता है। इसको शब्दब्रह्म भी कहते हैं, यद्यपि कुछ व्याख्याकारों के अनुसार परनाद और इस महानाद में भेद है (द्रष्टव्य-शारदातिलक)। क्रमशः अपर बिन्दु, बीज और अपर नाद के आविर्भाव से सृष्टि पूर्ण होती है।

ऊपर के संक्षिप्त विवरण से जहाँ यह स्पष्ट होगा है कि चैतन्य ही एकमात्र शक्ति है, वहीं यह भी स्पष्ट होगा कि सृष्टि आकाशकुसुम के समान सर्वथा मिथ्या नहीं है। चैतन्यशक्ति का ही आभास समस्त जगत् है। **'एकैव सा महाशक्तिः यया सर्वमिदं ततम्'**। चैतन्य शक्ति का आभास होने के कारण स्वरूपतः जगत् उससे अभिन्न है। 'सत् ही अनादि काल में विद्यमान था, एक और अद्वितीय।' उसमें ही ज्ञानपूर्वक अपने को बहुधा नाम-रूप के द्वारा विशेषित किया, किन्तु वह स्वयं सब वस्तुओं में अन्तर्निहित है। नाम रूप ही अपने नानात्व में असत्य है, किन्तु उनमें व्यवहार चलता है। अतः इस संविद् अद्वैतवाद को दो भ्रान्तियों से बचना आवश्यक है– शून्यवाद और नानात्ववाद या विषयात्मवाद। न तो जगत् की असंख्य सीमित वस्तुएँ स्वभाव से निरपेक्षतया सत्, न वे सर्वथा मिथ्या और शून्य हैं और न संविद् नाना विषयों में कोई एक विषय है और न वह स्वरूपशून्य है। जैसे जगत् संविद् में समेटा हुआ है, ऐसे ही संविद् अशेष शक्तिसम्पन्न प्रकाश विमर्शात्मक शिव-शक्ति सामरस्य है।

ऊपर के विवरण से स्पष्ट होगा कि संविद् अद्वैतवाद तत्त्वतः शैव अद्वैतवाद के अत्यन्त

निकट है और अपनी परमार्थ दृष्टि में मूल औपनिषद अद्वैत से अभिन्नप्राय है। काश्मीर शैव मत से उसका भेद मुख्यतया उपासना के प्रसंग में और परिभाषाओं में विषय में है, अद्वैत वेदान्त से उसका भेद सृष्टि-प्रक्रिया के विस्तार में और साधन क्रम में है तथा माया शक्ति की प्रचलित व्याख्या के विषय में है। यह स्मरणीय है कि शाङ्कर सम्प्रदाय में श्रीविद्या अंगीकृत है। सौन्दर्यलहरी में अद्वैत वेदान्त और श्रीविद्या का एक ही भाव मिलता है।

तांत्रिक उपासना का मूलाधार मन्त्रविद्या है। मन्त्र को आजकल बहुत से लोग या तो सांकेतिक और संक्षिप्त अभिधान मानते हैं या तिलस्मी अनर्गलता। इस विषय की मीमांसा प्रत्यगात्मानन्द सरस्वती जी ने अपने जपसूत्र में की है। वे स्वयं भौतिकी के आचार्य थे। प्रत्येक वस्तु का एक सहज स्वस्पन्दन भी होता है। जिस शब्द को हम सुनते हैं, वह तो किसी भौतिक माध्यम में अभिघात से उत्पन्न होता है और इससे भिन्न वस्तुओं का अणुगत सहज स्पन्दन होता है। अणुओं के अन्दर निरन्तर स्पन्दन होता रहता है, सभी भौतिक पदार्थ स्पन्दात्मक गति से व्याप्त हैं, जो उनके आन्तरिक अवयवों में होती रहती है। अन्ततोगत्वा ये स्पन्दन की तरंगें अत्यन्त रहस्यमय बन जाती हैं और उनका कुछ भी पता विशिष्ट गणित के अतिरिक्त नहीं चलता, किन्तु यह निर्विवाद है कि सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्तर से स्थूल स्तर तक सभी वस्तुओं में स्पन्दन रहता है, जिसके प्रभाव से हम उनका प्रत्यक्ष करते हैं। उदाहरण के लिए प्रकाश की रश्मियों का स्पन्दन रूप और रङ्ग को आभासित करता है। भौतिक स्तर पर यह स्पन्दन ही उनके बीजभूत मन्त्र का प्रतिरूप है।

मन्त्र स्वयं चित्तात्मक होता है। **मन्त्रश्चित्तम्**– चित्त स्वयं चैतन्य का ही विषय से संकुचित होने वाला रूप है। **'चितिरेव चेतनपदादवरूढा चेत्यसङ्कोचिनी चित्तम्'**– संक्षेप में किसी विषय के आकार में तन्मय चित्त मन्त्रशक्ति का माध्यम होता है। जब मनुष्य किसी एक विचार पर अपनी चेतना को केन्द्रित करता है और उसे अपने जीवन का मूलसूत्र बना लेता है, तो वह विचार ही एक प्रकार से मन्त्र कहा जा सकता है। किन्तु साधना के प्रसङ्ग में इन बातों के अतिरिक्त एक तीसरी बात और आवश्यक है कि न केवल मन्त्र जीवन का मूलसूत्र बनना चाहिए, न केवल वह तन्मय चित्त का केन्द्र बनना चाहिए, अपितु उसे गुरुपरम्परा से प्राप्त और शक्तिसम्पन्न होना चाहिए– **'मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यम्'**। ईश्वर ने ही जिस शब्द से अपने को प्रकाशित किया है, उसकी गुरुशिष्यपरम्परा के द्वारा वही मन्त्र के रूप में प्राप्त होता है। सामान्यत: मन्त्र वर्णात्मक या नामात्मक होते हैं या वाक्यात्मक होते हैं– उदाहरण के लिए प्रणव वर्णात्मक है, शिव-नारायण के प्रसिद्ध मन्त्र नामात्मक हैं, विभिन्न प्रकार की गायत्रियाँ वाक्यात्मक हैं।

मन्त्र-जप की दो अवस्थाएँ कही जाती हैं, एक तो जिसमें मन्त्र का मानसिक स्मरण अविच्छिन्न रूप से होता है। दूसरी अवस्था वह है, जिसमें साधक की चेतना मन्त्र के बाहरी आवरण को भेद कर सुषुम्णा में प्रवेश करती है। इसको दूसरे प्रकार से भी कहा जा सकता है, जिस समय जप संलग्न चेतना हृदय में या शून्यभाव में प्रवेश करती है, उस समय यह अनाहत नाद सुनने लगती है– स्मरणीय है कि शून्य आकाश का ही गुण शब्द माना जाता है। यही कुण्डलिनी का मार्ग भी खुलता है। इस अवस्था से साधक की चेतना एक बृहत्तर चेतना से निर्देशित होने लगती है। महाशून्य में पहुँच कर उसके लिए चित्कला के अवतरण की प्रतीक्षा ही शेष रहती है।

कुण्डलिनी के विषय में बहुत प्रकार के वर्णन शास्त्रों में मिलते हैं और बहुत सी आधुनिक व्याख्याएँ भी की गयी हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मानव शरीर संस्थान में मेरुदण्ड का विशेष महत्त्व है और उसके अन्दर नाड़ियों के चक्र मिलते हैं। किन्तु जैसे श्वास-प्रश्वास स्वत:प्राण न होकर प्राण- शक्ति के कारण वायु के विक्षोभ हैं, ऐसे ही स्थूल शरीर की नाड़ियां सूक्ष्म शरीर के सन्निवेश से प्रतिरोपित होती हैं। कुण्डलिनी शक्ति एक ओर वासनावेष्टित सूक्ष्म शरीर से सम्बन्ध रखती है, दूसरी ओर वह जागरित होने पर स्वरूपोन्मुख चैतन्य का क्रमिक आविर्भाव सूचित करती है। कुण्डलिनी शक्ति महाशक्ति का कुण्डलित या सुप्तवत् रूप है, जिसका जागरण मूलाधार है। इतना निश्चित है कि मन्त्र- साधना से एक अपूर्व शक्ति का साधक में उन्मेष होता है, जो कि क्रमश: विकसित होती रहती है। यह शक्ति व्यक्ति को अपने अतीत से मुक्त करती है और विश्व चैतन्य से जोड़ती है।

कुण्डलिनी योग में नाना चक्रों के विवरण मिलते हैं, जिनमें तत्त्व, देवता और वर्ण विभिन्न रूप से विन्यस्त हैं, किन्तु इन चक्रों का विवरण सब शास्त्रों में एक—सा नहीं है। इनका यथार्थ साधना के द्वारा ही उपलब्ध होता है। एक आधुनिक दार्शनिक अवधारणा है, जिसे OPERATIOLALISM या प्रक्रियावाद कहते हैं। इसके अनुसार प्रक्रियात्मक व्यावृत्तियों के वाचक पारिभाषित शब्दों का अर्थ प्रक्रिया के द्वारा ही पता चल सकता है। आधुनिक विज्ञान के अनेक पारिभाषित शब्द इसी प्रकार के हैं। उनका अर्थ गणितीय समीकरणों और मापन के द्वारा ही पता चलता है। ऐसे ही मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र, चक्र आदि का अर्थ भी बाहरी रूप से अक्षरविन्यास या रेखाविन्यास मात्र प्रतीत होते हुए भी उनकी तात्त्विक सार्थकता साधन प्रक्रिया के बिना बोधगम्य नहीं होती। वह साधना के अन्तर्गत ही प्रकट होती है। उनमें कौन से तत्त्व साङ्केतिक

रूढि मात्र हैं, कौन से निरूपक आकार हैं, कौन से गुरुसंकल्प से अभिमन्त्रित अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न हैं। इसका निर्णय बाहर से नहीं किया जा सकता।

तान्त्रिक साधना में तीन मुख्य आयाम होते हैं, जो काय, वाक् और चित्त से सम्बन्ध रखते हैं। शरीर से सम्बन्ध रखने वाली क्रियाएँ आसन मुद्रा, न्यास और प्राणायाम मुख्यतया हैं। वाक् से सम्बन्ध रखने वाली क्रिया मन्त्रजप है और चित्त से सम्बन्ध रखने वाली प्रक्रिया ध्यान, भावना और प्रणिधान हैं, जप भावना और प्रणिधान में ध्येय विषय देवात्मक होता है। देवता के तीन रूप माने जाते हैं– स्थूल, सूक्ष्म और पर। स्थूल रूप विग्रहात्मक होता है, सूक्ष्म रूप मन्त्रात्मक होता है, पर रूप चैतन्यात्मक होता है। देवपूजा के उपायों में ही प्रतिमापूजन के साथ ही यन्त्रपूजन भी होता है। प्रतिमा ध्यान मन्त्र से बनती है और उसी का सूक्ष्म साङ्केतिक आकार यन्त्र होता है। मन्दिरों में गर्भगृह की प्रतिमा के नीचे यन्त्र स्थापित किया जाता है, मानो उसी का विकसित रूप प्रतिमा है। देव पूजन बाहरी रूप से और मानसिक रूप से भी होता है, जहाँ पूजा भावना में बदल जाती है। इस प्रकार उपासना का यह विधि पक्ष भावना द्वार से साधना के सूक्ष्म द्वार को खोल देता है। इसी प्रकार सूक्ष्म मार्ग का लक्ष्य अपरोक्षानुभूति या आत्मसाक्षात्कार है।

उपासना विषय में एक प्राचीन मत यह है कि वह सर्वथा शास्त्रविधि के अनुसार कर्म सम्पादन है। दूसरा आजकल यह प्रचलित मत है कि उपासना मूलत: भावनात्मक होती है। वस्तुत: यह दोनों पक्ष जुड़े हुए हैं। शास्त्रविधि, श्रद्धा और भक्ति, विचार, भावना और ध्यान ये सभी एक समन्वित बाहरी और आन्तरिक साधना क्रम के अंग हैं। समस्त उपासना का तात्पर्य योग की प्राप्ति ही है। योग एकाग्रभूमिक चित्त की एकाग्रता होती है, जो तत्त्वों का उत्तरोत्तर भेद कर परमात्म तत्त्व में समाहित होती है। परमेश्वर के ज्ञापक मन्त्रात्मक शब्द और ध्येय रूप से आरम्भ कर वह उनके साक्षात्कार में चरितार्थ होती है। समस्त उपासना सीमित अहम् का पराहन्ता के चरणों में निवेदन है।

यह प्रश्न किया जा सकता है कि तन्त्रशास्त्र के जो दार्शनिक मूलाधार ऊपर निर्दिष्ट हैं, वे स्पष्ट नहीं करते कि किस प्रकार का चैतन्यवाद या आत्मवाद तन्त्रशास्त्र के लिए आवश्यक है। ऊपर यह कहा जा चुका है कि आगमिक दर्शन द्वैत, द्वैताद्वैत और अद्वैत इन तीनों दृष्टियों से प्रणीत हैं। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि श्रीसम्प्रदाय या त्रैपुरसिद्धान्त मूलत: अद्वैतवादी नहीं हैं। उसकी गुरुपरम्परा में शंकराचार्य मध्य मणि के समान हैं। उनकी **सौन्दर्यलहरी** में अद्वैतवाद सुनिश्चित है। यद्यपि उसका शक्तिपात कुछ विद्वानों को शंकर के अद्वैत के विरुद्ध

प्रतीत होता है। वस्तुत: ऐसा नहीं है, यह हमने अपनी पुस्तक Life and Thought of Samkaracarya में विस्तार से प्रतिपादित किया है। **त्रिपुरारहस्य ज्ञान खण्ड** और **ललितासहस्रनाम** एवं उसकी भास्करराय की व्याख्या में यह स्पष्ट है। आगमों में जो अनेक प्रकार के वाक्य मिलते हैं, उनको इसी सन्दर्भ में समझना चाहिए। वस्तुत: अद्वैत आगमिक दर्शन का सबसे गम्भीर और प्रामाणिक विवरण अभिनवगुप्तपादाचार्य का है, जो उनकी **ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी** में पाया जाता है। यद्यपि अभिनवगुप्त शैव थे, उनके दार्शनिक सिद्धान्त मूलत: शाक्त दर्शन से भिन्न नहीं थे। भेद संज्ञाओं और परिभाषाओं और गौण विवरणों के तत्त्वों में है। साधनसम्बन्धी विवरण में अवश्य ही अनेक भेद हैं। शाक्त दृष्टि का विस्तृत प्रतिपादन महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज की अनेक कृतियों में देखा जा सकता है।

अन्त में तन्त्रशास्त्र के विषय में कुछ अन्य प्रचलित भ्रान्तियों पर दृष्टिपात करना अस्थान में न होगा। तन्त्र को अज्ञानी मनुष्य की दुरभिलाषाओं का मनमोदक कहा गया है अथवा तिलस्मी प्रवंचना बताया गया है अथवा अनैतिकता का प्रच्छन्न प्रचलन कहा गया है। जहाँ तक अज्ञानमूलक कल्पनाओं का प्रश्न है, वह आरोप तो धर्ममात्र पर लगाया गया है। कट्टर देववादी तन्त्र को हेय मानते हैं, ईसाई वैदिक धर्म को हेय मानते हैं, बुद्धिवादी ईसाई धर्म को हेय मानते हैं, आधुनिक समाजशास्त्री नृतत्त्वशास्त्री न केवल प्रागैतिहासिक धर्मों को मिथ्या मानते हैं, वे सभ्यतायुगीन धर्मों को भी कपोलकल्पित ही मानते हैं। अत: तन्त्रशास्त्र के ऊपर काल्पनिकता का आरोप धर्मान्तरीय या धर्ममात्रविरोधी आग्रह का ही परिचायक है।

मनुष्य दैनन्दिन जीवन में उपयुक्त होने वाली शक्तियों के अतिरिक्त क्या और कोई ऐसी शक्ति नहीं है, जो उसे लोकोत्तर सत्ता से जोड़ सके। तन्त्र और योग के अनुसार मनुष्यमात्र में ऐसी शक्ति है। सामान्य् जीवन में भी अनेकधा अलौकिक घटनाएँ देखी जाती हैं। अलौकिक जीवन के प्रति मनुष्य का आकर्षण स्वाभाविक और अनिवार्य है। इस आकर्षण को तन्त्र और योग एक वैज्ञानिक और क्रियात्मक रूप देते हैं। न्यूनाधिक रूप में सभी धर्मों में इस साधन विज्ञान के तत्त्व पाये जाते हैं। अत: चत्मकारी सिद्धियाँ प्रवञ्चनात्मक नहीं कहीं जा सकतीं। यह सही है कि सच्ची बातों के पीछे पीछे झूठी बातें भी चलती हैं। प्रवंचना एक मनोवृत्ति से जन्म लेती है, जो स्वार्थसिद्धि के लिए मिथ्या को साधन बनाती है। तिलस्म और जादूगरी तो मनोरंजन के लिए हाथ की सफायी होती है, उसमें प्रवंचना का तत्त्व गौण होता है। तन्त्र योग या धर्म न तिलस्म है, न प्रवंचना। उनका प्रयोजन प्रदर्शन है ही नहीं, उनका प्रयोजन दर्शन ही है। अवश्य ही उनमें

कभी कभी अलौकिक चमत्कार देखे जाते हैं, जो प्रवंचना न होकर जिज्ञासा के लिए नये द्वार को खोलना होता है। चमत्कारों पर बहुत वाद-विवाद चलता रहा है। चमत्कारमात्र को अप्रामाणिक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि जो ऐसा व्यापक रूप से कहते हैं, वे आँखों देखी बात को पूर्व मान्यता के आधार पर ठुकराते हैं।

जहाँ प्रच्छन्न अनैतिकता का आरोप है, वह वाममार्गी आचार और कुछ तान्त्रिक उक्तियों पर आधारित है। कुछ विद्वान् इन आपत्तियों का उत्तर वामाचार को सांकेतिक बता कर देते हैं। इस विषय में प्रामाणिक विवरण **परशुरामकल्पसूत्र** में देखना चाहिए। तिब्बती में संरक्षित सिद्धों के चरित भी आलोच्य हैं, **श्री श्री रामकृष्णलीलाप्रसंग** के कतिपय स्थल इस विषय पर प्रकाश डालते हैं। प्रमोद कुमार चट्टोपाध्याय की **तन्त्राभिलाशीर साधु संग** भी द्रष्टव्य है। वस्तुतः वामाचार एक रहस्य के आवरण में ढका हुआ है, जो उसमें विधिवत् दीक्षित के लिए ही प्रकाशित हो सकता है। वह समाज में प्रकाश रूप से सबके अधिकार क्षेत्र में नहीं आता। इसलिए उससे अनैतिकता के प्रचार का प्रश्न नहीं उठता, न उसमें अनैतिकता के समर्थन का कोई प्रमाण है।

प्रस्तुत ग्रन्थ श्रीविद्यार्णव की रचना विद्यारण्य ने लगभग १२वीं शताब्दी में की थी। पद्मपादाचार्य की शिष्यपरम्परा के अन्दर श्रीलक्ष्मण के निर्देश से यह रचना सार्थक हुई। ग्रन्थ में श्रीविद्याविषयक परम्पराओं का संग्रह है और इसका विशेष आग्रह साधन और आचार पर है। ग्रन्थ विशालकाय है, इसकी भावविवृति निबद्ध कर परमपूज्य गुरुमहाराज ने साधक मण्डली पर अपूर्व अनुग्रह किया है। श्रीविद्या के प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने जो अनेकविध भगीरथ प्रयत्न किया है, उसका गुणगान भावी युगों में होता रहेगा। उनके ही अनुग्रह से जो मैंने थोड़ा बहुत लिखा है, उसमें अवश्य ही मेरी अल्पज्ञता के कारण त्रुटियाँ होंगी। मेरा पाठकों से यही निवेदन है कि–

'न चात्रातीव कर्तव्यं दोषदृष्टिपरं मनः'।

श्रीविद्यासाधनापीठ

— श्रीप्रकाशानन्दनाथ

तेजोमयमहाविद्यां शेखराञ्चितमस्तकाम्।
रक्ता चतुर्भुजां वन्दे श्रीविद्यागुरुपादुकाम्।।

भगवत्पाद आचार्य शंकर ने विश्वकल्याणार्थ अनीश्वरवादी मतों का खण्डन करके अपने योगबल से वैदिक सिद्धान्तों के सारसर्वस्व अद्वैत मत को सर्वोत्तम सिद्ध किया। तदानीन्तन विचारक एवं दार्शनिकों ने भी अपना–अपना आग्रह छोड़कर अद्वैत सिद्धान्त को सर्वतोभावेन स्वीकार किया।

भविष्य में भी यह विचारधारा अजस्र प्रवाहित होती रहे, एतदर्थ आचार्य शंकर को यह प्रतीति हुई कि ''यावद् व्यवहारो न विरमेत तावदद्वैतं नैव सिद्ध्येत्'' अर्थात् जब तक लौकिक व्यवहार का परित्याग नहीं होता है, तब तक अद्वैत सिद्धि सम्भव नहीं है। फलतः संन्यास ग्रहण करने से ही लौकिक व्यवहार का विराम संभाव्य है।

इस करालकलिकाल में पूर्ण वैराग्य की कल्पना असम्भाव्य प्रतीत होती है। अतः भविष्य में अद्वैत सिद्धि की उपलब्धियाँ भी सम्भव नहीं है। तथैव अद्वैत विचारधारा के अनवरत प्रवाह की भी सम्भावना शशशृंगवत् होगी।

सिद्धों का समारम्भ सदातन होता है। अतः आचार्य शंकर ने श्रीविद्या सम्प्रदाय को गतिमान् किया। निगमागम अनुमोदित एवं हयग्रीव, दत्तात्रेय, परशुराम, भगवदवतारों ने भी श्रीविद्या की सुखपूर्वक साधना–उपासना का मार्ग प्रशस्त किया। कलिकाल में भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाली समस्त साधनाओं में श्रीविद्या को ज्येष्ठता एवं श्रेष्ठता का स्थान प्रदान किया एवं भगवत्पाद आद्यशंकराचार्य ने भी पूर्व भगवदवतारों का अनुसरण करते हुए अद्वैत मत की विचारधारा को अक्षुण्ण एवं सुरक्षित रखने के लिए श्रीविद्या साधना को ही सर्वोत्तम रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने अपने १४ शिष्यों (पाँच सन्यासी एवं नौ गृहस्थ शिष्यों) से समस्त भारत में श्रीविद्या सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। **''किं बहूक्तेन–सम्प्रदायो हि नान्योऽस्ति लोके श्रीशंकराद् बहि''**:– श्रीविद्यार्णवकार विद्यारण्य स्वामी की इस सूक्ति से यह सिद्ध है कि अब इस लोक में श्रीविद्या

सम्प्रदाय की परम्परा आचार्य शंकर के ही अनुग्रह से प्रवर्तमान है। समस्त भारत में यथाधिकार चारों वर्ण इस साधना में संलग्न थे। प्रबुद्धवर्ग ने तो इस साधना से अलौकिक सिद्धियों के चमत्कारों से सर्वसाधारण को चमत्कृत भी किया। सुप्रबुद्ध वर्ग द्वारा यह साधना समग्ररूप से समादृत हुई। आज भी आचार्य शंकर की अद्वैत शंखध्वनि दिग्दिगन्त को आह्लादित कर रही है एवं विजयपताका गगनतल पर दोधूयमान हो रही है। उनकी गौरवगाथा के लिए तो यही कहा जाता है कि–

अकलितमहिमान: केतनं मंगलानाम्।
कथमपि भुवनेऽस्मिन् तादृशाः सम्भवन्ति।।

इसी क्रम में स्वामी करपात्री जी महाराज का आविर्भाव हुआ तथा उन्होने अपने तपोबल से समृद्ध शेमुषी के द्वारा वैदिक सनातन धर्म का आजीवन प्रचार प्रसार किया। सामाजिक कार्यों के अन्तर्गत अ. भा. रामराज्य परिषद्, धर्मसंघ आदि की स्थापना, गोरक्षा आन्दोलन आदि के अनन्तर वेदान्त भक्ति के ग्रन्थों का प्रणयन किया तथा वेदभाष्य एवं अन्य साहित्यिक कृतियों का सृजन किया। तदनुसार उन्होंने भी जनकल्याण के लिए श्रीविद्या साधना के मार्ग को सर्वोपरि मानकर उत्तर भारत में उसका विशेषत: प्रचार प्रसार किया। स्वामी जी ने सिद्ध परम्परा में होते हुए भी अपने साधकों के मार्गदर्शन के लिए विचार ग्रन्थों का प्रणयन किया।

श्रीविद्या साधना के अन्तर्गत श्रीयन्त्र अर्चन की पद्धतियाँ विभिन्न सम्प्रदायवालों ने प्रकाशित की हैं। 'श्रीविद्यावरिवस्या एवं श्रीविद्यारत्नाकर' शङ्कर सम्प्रदायानुसार निरूपित दक्षिण मार्ग दिव्यभाव पर आधारित है। इसमें आगम क्रियाकलापों में निगम सिद्धान्तों का भी सम्मिश्रण है। यह अनुकल्प से तान्त्रिक विधि से सम्पन्न हो जाती है और वेद विरुद्ध भी नहीं। इसमें अनवच्छिन्न सम्प्रदाय 'गुरुपरम्परा' का ही विशेष महत्त्व है। शङ्कर सम्प्रदाय ही अनवच्छिन्न रूप से विद्यमान है, आगम सिद्धान्तानुसार साधना की सफलता सम्प्रदायाधीन है। अत: श्रीस्वामी जी महाराज ने आचार्य शङ्कर समर्थित त्रैपुरसिद्धान्त के अनुसार ही पद्धतियों का प्रणयन किया, जिसमें समयाचार का प्राधान्य है। स्वामी जी की परम्परा को आगे बढ़ाते हुये पूज्य गुरुदेव शिवसायुज्य प्राप्त दत्तात्रेयानन्दनाथ जी ने विगत २०,२२ वर्षो से काशी में निवास पुर्वक श्रीविद्या का प्रचार, प्रसार करते हुए श्रीविद्या साधना पीठ की स्थापना की, लक्षार्चनों, कोटिअर्चनो के माध्यम से

प्रबुद्धवर्ग एवं विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया एवं दीक्षा के द्वारा विशाल शिष्य समुदाय तैयार किया, श्रीविद्या साधना पीठ के अन्तर्गत नव निर्मित मण्डप में श्रीविद्या साधना पीठ की प्रधान अङ्गभूत अनुत्तराम्नाय अधिष्ठात्री श्रीशांकरी देवी ललिता महात्रिपुरसुन्दरी एवं श्रीयंत्र की स्थापना की, श्रीविद्या सम्प्रदाय में पूर्ण दीक्षित अनुत्तराम्नाय उपासक वर्ग को यह प्रधानपीठ रूप से साधना में सहायक सिद्ध होगा, परम गुरु, गरु की इच्छा एवं क्रिया का मूर्त रूप श्रीविद्या साधना पीठ है, तथा यहाँ गुरु द्वय के सिद्धान्तो का अनुसरण करते हुये श्रीविद्या का प्रचार प्रसार तो हो ही रहा है नित्य नैमित्तिक चक्रार्चन भी हो रहा हैं। भविष्य में भी पीठ में इस सिद्धान्तो एवं परम्पराओं का अनुसरण होता रहेगा।

शक्तितत्त्व और श्रीविद्योपासना

– प्रो. युगल किशोर मिश्र
कुलपति
ज.रा.राजस्थान सं. वि., जयपुर

प्राणिमात्र के लिए यह संसार एक 'युद्धक्षेत्र' के समान है। संसार में जन्मग्रहण करने वाला प्रत्येक जीव सांसारिक बन्धनों, आपदाओं, दु:खों आदि पर विजय प्राप्त कर जीना चाहता है। इसके लिए उसे शक्ति की अपेक्षा है। अतएव शक्ति सम्पन्नता के लिए श्रीविद्या की उपासना मानवमात्र के लिए आवश्यक है।

शक्ति–तत्त्व पर आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करते समय हमें प्रथमत: यह् जानना चाहिये कि हमारे शास्त्र इस जगत् को दो भाव से देखते हैं– एक व्यष्टिरूप से तथा दूसरे समष्टि रूप से। व्यष्टि अर्थात् जीव (या प्राणी) निर्बल होने के कारण 'उपासक' कोटि में आता है तथा समष्टि अर्थात् जगन्नियन्ता (या ईश्वर) शक्तिघन होने के कारण 'उपास्य' कोटि में आता है। जगन्नियन्ता या जगदीश्वर शक्तिघन होने के कारण अनन्त शक्तियों का भण्डार है। उसी सर्वशक्तिमान् से उपासना के माध्यम से व्यष्टि जीवों को शक्ति प्राप्त होती है। जब भी जीव अपनी शक्ति बढ़ाना चाहे अर्थात् अल्पशक्ति से महाशक्तिसम्पन्न बनना चाहे तो उसका एकमात्र उपाय परमात्मा की उपासना है।

उपासना का अर्थ है– 'उप–समीप में आसना'– स्थिति। अर्थात् अपने मन को परमात्मा (= शक्तिघन) के किसी एक रूप में स्थिर करने का अभ्यास करना। मनुष्य का मन अति चंचल है किन्तु उसकी यह विशेषता है कि विशेष प्रयत्न कर यदि उसे किसी में लगाया जाता है तो वह उसके गुण–धर्मों को अपने में लेता रहता है तथा स्थिर होने पर स्वयं वह तदाकार हो जाता है साथ ही इन्द्रियों को भी तदाकार बना देता है। उदाहरणार्थ– श्रेष्ठ अभिनेता अपने मन को भगवान् श्रीराम के चरित्र में या अन्य किसी चरित्र में लगाता है तो वह उनके गुण–धर्मों को अपने में ग्रहण कर लेता है तथा अवसर आने पर नाटक, रामलीला आदि में तद्वत् हाव–भाव से अभिनय कर दर्शकों के मन को मोह लेता है तथा दर्शकगण उसे श्रीराम या अन्य चरित्र को समझकर अभिभूत हो जाते हैं। फलत: मनुष्य को उपासना के माध्यम से अपने मन को शक्तिघन परमात्मा में लगाना चाहिये ताकि मनुष्य का मन परमात्मा के गुण–धर्मो को अपने में संगृहीत कर महैश्वर्य–सम्पन्न बन सके।

'शक्ति' शब्द से सामान्यतया 'सामर्थ्य' अर्थ का बोध होता है। 'किस कार्य में सामर्थ्य'– यह जिज्ञासा होने पर विशेष प्रकरण न होने से 'सब कार्य में सामर्थ्य' यह भाव प्राप्त होगा। ऐसा सामर्थ्यशाली कौन है? तो इसका उत्तर होगा– 'सर्व कार्यों में सामर्थ्यवान् (शक्तिघन) जगदीश्वर है।

जो निर्विशेष शुद्ध–तत्त्व सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का आधार है, उसी को पुरुष दृष्टि से 'चित्' तथा स्त्रीत्वदृष्टि से 'चिति' कहा जाता है। शुद्ध चेतन या शुद्ध चिति– ये एक ही तत्व के दो नाम हैं। माया में प्रतिबिम्बित उसी तत्त्व की जब पुरुष रूप में उपासना की जाती है, तब उसे ईश्वर, शिव, राम, कृष्ण अथवा भगवान् आदि नामों से पुकारते हैं और उसी को जब स्त्री रूप में उपासना करते हैं तो दुर्गा, त्रिपुरसुन्दरी, ईश्वरी अथवा भगवती कहते हैं। इस प्रकार शिव–गौरी, राम–सीता, कृष्ण–राधा, विष्णु–महालक्ष्मी परस्पर अभिन्न हैं।

वैदिक वाङ्मय में यह उल्लेख आता है कि उस एक परतत्त्व ने लोकहित की कामना से अपने को दो भागों (पुरुष एवं स्त्री रूप) में विभक्त किया है। इस प्रकार परमात्मा और उसकी शक्ति अभिन्न और अच्छेद्य है। शक्तिविहीन परमात्मा और परमात्माविहीन पराशक्ति अचिन्त्य है। अतएव ऋग्वेद के नासदीय–सूक्त में कहा गया है कि सृष्टि के आदि में वह एक अपनी 'स्वाधा' के साथ बिना वायु के सांस ले रहा था। (आनीदवांत स्वधया तदेकम्) इस 'स्वधा' नाम्नी शक्ति का स्वरूप ऋग्वेद के ''वागम्भृण–सूक्त (वाक्–सूक्त) में भी मिलता है, जहाँ पराशक्ति कहती है''– मैं रुद्र, वसु, आदित्य इन सब देवों के द्वारा काम करती हूँ किसी भी देव के नाम से जो अर्पित किया जाता है, उसका फल मैं देती हूँ, जगत् की उत्पत्ति मैंने की है, जिसको चाहूं मेघावी, उग्र या ब्रह्म बना सकती हूँ।''

परमात्मा की इस अनिवर्चनीया अनन्त शक्ति को विद्वानों ने 'तादात्म्य' सम्बन्ध से कहा है। अर्थात् शक्ति और शक्तिमान में तादात्म्य सम्बन्ध बतलाया है। 'तादात्म्य' का लक्षण शास्त्रों में भेद सहिष्णु अभेद किया है। अर्थात् भेद रहते हुए भी अभेद को तादात्म्य कहते हैं। उदाहरणार्थ– घर में जलने वाली दीपशिखा का घर में फैले हुए प्रकाश के साथ जो सम्बन्ध है वही 'तादात्म्य' है। क्योंकि दीपशिखा और उसका प्रकाश परस्पर सर्वथा भिन्न नहीं है। यदि भिन्न होते तो दीपशिखा हटाने से प्रकाश न हटता। जैसे– घट–पट परस्पर भिन्न हैं, अतः घट हटाने से पट अर्थात् वस्त्र नहीं हटता। तब क्या दीपशिखा और उसका प्रकाश अभिन्न है? यह भी सही नहीं है। यदि ऐसा होता तो दीपशिखा में हाथ लगाने से हाथ में फफोले पड़ जाते हैं किन्तु हाथ पर प्रकाश आने से यह दोष नहीं आता। फलतः सुतरां अभेद भी नहीं कहा जा सकता। अतः

भेद–अभेद दोनों ही माने जाएंगे। यहाँ प्रकाश 'शक्ति' है और दीपज्योति ही 'शक्तिवाली' है। इनका जब भेद से व्यवहार करते हैं तो कहा जाता है– दीप का प्रकाश। जब अभेद से व्यवहार करते है तब प्रकाश है–इतना ही कहते हैं।

यह ध्यातव्य है कि 'निर्गुण तत्त्व की उपासना सामान्य–जन के लिए कठिन है, अतः सनातनधर्म सगुण परमात्मा की माता एवं पिता के रूप में उपासना करता आया है। इन दो भावों में से किसी एक का आश्रय लेकर प्राणी साधना–पथ पर अग्रसर हो सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता में इसी दृष्टि से कहा है–

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोङ्कारं ऋक्सामयजुरेव च॥

उपर्युक्त दो भावों में भी जीवमात्र को माता सबसे अधिक प्रिय और श्रद्धेय होती है। माता जैसा कोमल, दयालु, हृदय किसी का भी लोक में दृष्टिगोचर नहीं होता। सन्तान के अनेकों अपराधों को क्षमा कर माता सदैव उसी की हितैषी रहती है। जगज्जननी माता की ममता एवं वात्सल्य का वर्णन करते हुए कहा जाता है कि–

पितेव त्वत्प्रयाज्जननि परिपूर्णागसि जने।
हितस्रोतो वृत्या भवति च कदाचित्कलुषधीः।
किमेतन्निदोषः क इह जगतीति त्वमुचितै।
रूपायैर्विस्मार्य स्व जनयति माता तदसि नः॥

अर्थात् हे राजराजेश्वरी, आपके पति जब पूर्णापराध जीव के ऊपर पिता के समान हित की दृष्टि से क्रोधित हो जाते हैं, उस समय आप ही– 'यह क्या', इस जगत् में निर्दोष है की कौन? इत्यादि रूप से उपदेश कर उनके क्रोध को शान्त करवा के दया को जागृत कर अपनाती हैं, तभी तो आप हमारी वात्सल्यपरिपूर्णा माता है।

मातृशक्ति की उदारता एवं दयार्द्रता का अनुपम उदाहरण श्रीमद्वाल्मीकि रामायण में अनेक स्थलों पर मिलता है। रावणवध के अनन्तर राक्षसियों को दण्ड देने की इच्छा करने वाले श्री हनुमान् जी से जगज्जननी भगवती जानकी ने यह कहते हुए छुड़ाया कि– "कार्य कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति"। अर्थात् हे मारुतिनन्दन! आपको (राक्षसियों पर) रोष त्यागकर करुणा का भाव अपनाना चाहिये क्योंकि इस संसार में ऐसा कोई नहीं है जो अपराध

करने से वंचित रहता हो। सन्तो का यह भी भाव है कि श्रीराम ने विभीषण और काक की रक्षा की तो इसमें क्या आश्चर्य है? क्योंकि वे दोनों ही शरणागत हुए थे। जगज्जननी जानकी जी ने तो राक्षसियों के बिना कुछ कहे ही, अपने आप श्रीहनुमान् जैसे हठीले से लंका प्रवास में लड़-झगड़ कर तत्काल अपराध करने वाली राक्षसियों को छुड़ाकर उनकी रक्षा की। इस प्रकार अनेक उदाहरणों से तथा प्रत्यक्षानुभूतियों से पराम्बा की उपासना कल्याणकारक एवं अभयप्रद सिद्ध होती है।

'शक्ति' उपासना की अपरिहार्यता

कहा जाता है कि एकबार पूज्यपाद शंकराचार्य शाक्तमत का खंडन करने के लिए कश्मीर गये। वहाँ जाते ही उनको इतने दस्त लगे कि उनमें उठने-बैठने की तो क्या बोलने तक की शक्ति नहीं रही। तदनन्तर एक बारह वर्ष की सर्व-सौन्दर्य-सम्पन्न कन्या उनके समीप आकर धीरे से कहने लगी-

हे शंकर! क्या आप शाक्तमत का खंडन और अद्वैत मत का मंडन कर सकते हैं? शंकर ने निर्बलता के कारण धीरे से कहा- देवि, मैं आया तो इसी विचार से हूँ, किन्तु इस समय मुझमें बोलने की शक्ति नहीं है, जब मुझमें शक्ति आ जायेगी तभी मैं कुछ कर सकूंगा। बिना शक्ति के कुछ भी नहीं कर सकता।

हे आचार्य, जब शक्ति के बिना आप कुछ कर नहीं सकते, तब शाक्तमत का खण्डन और अद्वैत मत का मंडन कैसे कर सकेंगे? हे मनीषि, मैं शिव की शक्ति शिवा हूँ। शिव तो, अद्वितीय, अचल, ध्रुव कूटस्थ और एकरस हैं, उनमें किसी प्रकार की क्रिया नहीं होती। क्रिया न होने से शिव को कोई जान नहीं सकता और शिव भी किसी को जान नहीं सकते। अपने को जतलाने और दूसरे को जानने के लिये ही शिव ने मुझ शक्ति को रहा है, यह आप जानते हैं। जिसके बिना आप कुछ नहीं कर सकते उसका खण्डन आप नहीं कर सकते। अत: शक्ति की उपासना अपरिहार्य है। अतएव कहा गया -

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम:।।

उपासना में गुरु की महत्ता

साधना-पथ का मार्गदर्शन गुरु के बिना संभव नहीं है। अत: श्रीविद्योपासना मे गुरु का

महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहां यह उपासकों को समझना आवश्यक है कि व्याधि की चिकित्सा में चिकित्सक का पहला कर्तव्य होता है कि व्याधि का मूल से संहार। अत: उस समय चिकित्सक 'रुद्र' की भूमिका में रहता है। परन्तु 'रुद्र' का कार्य करते समय व्याधि को जड़ से नष्ट करते हुए उसे ऐसी सावधानी के साथ काम करना पड़ता है कि जिससे सिर्फ बीमारी ही नष्ट हो, न कि बीमार भी चल बसे। इस कारण वह प्राण का पालन या 'विष्णु' का भी काम करता है और जब व्याधि जड़–मूल से कट गई तथा जान बच गई तब शरीर में नई ताकत तथा ऊर्जा के लिए पोषक रसायन, आहार आदि चीजों को देते हुए चिकित्सक रोगमुक्त प्राणी के शरीर में नई चेतना, स्फूर्ति की सृष्टि करता है तो वह 'ब्रह्मा' का भी कार्य करता है। इसी प्रकार साधना–मार्ग में सद्‌गुरु अपने शिष्य के अन्यथाभावरूपी अज्ञान का विनाश करता है तब वह अज्ञान संहारक होने से 'रुद्र' की भूमिका में होता है। प्रामादिक अज्ञान को काटते हुए साथ–साथ जब वह शिष्य के मन में यथार्थ ज्ञान की रक्षा करता है तब वह पालन या 'विष्णु' का काम करता है। जब वह अज्ञान को हटाते हुए तथा ज्ञान की रक्षा करते हुए नई–नई बातों को सिखाता व उपदेश करता है, तब वह सृष्टि या– 'ब्रह्मा का काम करता है। अत: सद्‌गुरू में त्रिदेव की उपस्थिति रहती है।

उत्तर भारत में श्रीविद्या के पुनरुद्धारक, सन्मार्गप्रवर्तक परमगुरुदेव सर्वतन्त्रस्वतन्त्र धर्मसम्राट् स्वामी करपात्रीजी महाराज के शिष्य सद्‌गुरुदेव श्रीदत्तात्रेयानन्दनाथजी को हम इसी रूप में स्मरण करते हैं तथा उनकी स्मृति में श्रद्धाभरित भावाञ्जलि अर्पित करते हैं।

अनुत्तराम्नाय अधिष्ठात्री श्री शांकरी देवी

—श्रीप्रकाशानन्दनाथ

श्रीविद्या साधना पीठ की स्थापना तथा पीठ के भवन के निर्मित होने के पश्चात् शिष्यों का पूज्य गुरुदेव से निरंतर यह आग्रह रहा कि यन्त्रपूजन के साथ ही माँ भगवती का एक भव्य विग्रह भी स्थापित हो, शिष्यों व साधकों के आग्रह को ध्यान में रखते हुए पूज्य गुरुजी ने सन् २००४ में श्रविद्यासाधनापीठ के सम्मुख (पश्चिम) में लगभग ४००० स्क्वायर फीट जिस भूमि की २००४ में खरीद की गयी थी, उस भूमिपर एक भव्य पूजा उपासना मण्डप का निर्माण कराकर २००८ में माँ पराम्बा की भव्य प्रतिमा की प्राणप्रतिष्ठा की। आगम सिद्धान्तानुसार तन्त्रसाधना की सफलता सम्प्रदायाधीन है। अत: श्रीस्वामी जी महाराज ने आचार्यशङ्करसमर्थित त्रैपुरसिद्धान्त के अनुसार ही पद्धतियों का प्रणयन किया, जिसमें समयाचार का प्राधान्य है। इसी क्रमानुसार पूज्य गुरुजी दत्तात्रेयानन्दनाथ द्वारा शास्त्रवर्णित परमशिव भट्टारक भगवान् विश्वनाथ का अविमुक्तक्षेत्र आनन्दवन ज्ञानमयी चिन्मयी परप्रेमास्पद काशीनगरी देहत्याग मात्र से सद्योमुक्ति प्रदात्री है, एवं श्रीविद्या साधनामात्र से जीवन्मुक्तिदात्री है। चतुषष्टितन्त्रों के उपदेशानन्तर पराम्बा के परम निर्बन्ध से प्रकटित परा-विद्या श्रीविद्या समस्त निगमागम शास्त्रों की सारभूत साधनप्रक्रिया है। इसी साधना की प्रधान अङ्गभूत **श्रीशाङ्करी देवी** अनुत्तराम्नाय की अधिष्ठात्री देवता हैं। स र्वदेवनिवासभूता श्रीकाशीनगरी में देवस्थानों का कालक्रम से तिरोभाव आविर्भाव का चंक्रमण चलता ही रहता है। इसी क्रम में **श्रीशाङ्करी देवी** श्रीललिता महात्रिपुरसुन्दरी का वैदिक तान्त्रिक उभयविध प्रक्रिया से संस्थापन श्रीविद्या साधना पीठ द्वारा साधकों को साधना मार्ग में सहायता एवं लोक कल्याण की दृष्टि को रखकर परमपूज्य गुरुजी दत्तात्रेयानन्दनाथ द्वारा आषाढ़ शुक्ल ५ पञ्चमी सं० २०६५ सोमवार दिनांक ७ जुलाई ०८ को किया गया। भवगती के विग्रह की प्राण प्रतिष्ठा के उपलक्ष्य में श्रद्धेय गुरुजी द्वारा ४० दिवसीय महोत्सव आयोजित किया गया, जिसके अन्तर्गत कोट्यर्चन का आयोजन हुआ, इसमें सभी साधक साधिकाएं सम्मिलित हुए। इस प्रकार शिष्यो तथा साधको के आग्रह को परिपूर्ण कर पूज्य गुरुजी ने यह लोककल्याणकारी कार्य किया।

गुरुमण्डलरूपिण्यै नमः

श्रीभुवनेश्वरी महास्तोत्र

शाक्तसाधना भगवती भुवनेश्वरी की उपासना के बिना पूर्णता को प्राप्त नहीं होती, अतः इनकी कृपा प्राप्त करना परम आवश्यक है। रुद्रयामलतन्त्र में भगवती भुवनेश्वरी का प्रकरण आता है। श्रीविद्यारण्य स्वामी के श्रीविद्यार्णवतन्त्र में भुवनेश्वरीपरिजात, दक्षिणामूर्तिसंहिता, शारदातिलक, प्रपंचसारसारसंग्रह, दशपटली, प्रयोगसार आदि प्रामाणिक ग्रन्थों का सारसर्वस्व भुवनेश्वरी प्रकरण में उपलब्ध है।

आदिशंकराचार्य तथा सकलागमाचार्य चक्रवर्ती श्री पृथ्वीधराचार्य के भुवनेश्वरी स्तोत्र उपलब्ध हैं। पूज्यपाद गुरुमहाराज शिवसायुज्यप्राप्त श्री दत्तात्रेयानन्दनाथ को प्रथम मन्त्रोपदेश भुवनेश्वरी का ही प्राप्त हुआ था।

अतः उनके शिवसायुज्य प्राप्त होने के बाद श्रीविद्यासाधनापीठ द्वारा प्रकाशित श्रीविद्या पत्रिका में साधकों के कल्याण हेतु भगवती भुवनेश्वरी के विषय में कुछ विवरण हो– ऐसी इच्छा हुई। पृथ्वीधराचार्यकृत स्तोत्र का बहुत ही सुन्दर उच्च कोटि का हिन्दी अनुवाद डॉ. अवन्तिका त्रिपाठी ने कर रखा था। डॉ० त्रिपाठी ने भगवती भुवनेश्वरी विषय में ही अपना गहन शोध कर शोध निबन्ध भी पूर्ण किया है, उनको इस स्तोत्र की पाण्डुलिपि राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से प्राप्त हुई थी। भुवनेश्वरीवरिवस्या में पूज्य गुरुजी ने इस महास्तोत्र को प्रकाशित किया हैं। प्रस्तुत स्तोत्र के पाठ में दो श्लोक अधिक हैं। इस स्तोत्र को पुनः प्रकाशित करते हुए मैं भगवती पराम्बा से प्रार्थना करता हूँ कि वे अपनी सतत कृपा इनपर बनाए रखें ताकि, साधको–भक्तों का कल्याण होता रहे।

मातश्शृणुष्व भुवनेश्वरि चित्स्वरूपे।
संवित्सुधोदधिसमुल्लसितोर्मिरूपे ॥
इच्छात्मिके! कलितज्ञानक्रियाकलापे!–
विन्दे कदा तु भवतीं शिवशक्तिरूपाम्॥

गुरुचरण सरोजरेणु
— श्रीप्रकाशानन्दनाथ
श्रीविद्या साधना पीठ

श्रीभुवनेश्वरीमहास्तोत्रम्

ॐ चञ्चन्मौक्तिकहेममण्डनयुता माताऽतिरक्ताम्बरा
तन्वङ्गी नयनत्रयाति रूचिरा बालार्कवद्भासुरा।
या दिव्याङ्कुशपाशभूषितकरा देवी सदाभीतिहा
चित्तस्था भुवनेश्वरी भवतु नः सेयं मुदे सर्वदा।। १।।

अनुवाद

जो माता चमकते हुए मणिजटित स्वर्णाभूषणों से सुशोभित हैं, गहरे लाल रंग के वस्त्रों को धारण किये हुए हैं, कृश अंगों वाली, तीन नेत्रों के कारण अत्यन्त शोभायमान अथवा अत्यन्त सुशोभित तीन नेत्रों से युक्त, उदयकालीन सूर्य के समान देदीप्यमान, दिव्य अङ्कुश और पाश से विभूषित हाथों वाली हैं, जो देवी सदैव भयनष्टकारिणी हैं वही चित्त में स्थित भुवनेश्वरी देवी हमारे लिए सदैव कल्याणकारिणी होवें।

कर्णस्वर्णविलोलकुण्डलधरामापीनवक्षोरूहां
मुक्ताहारविभूषणां परिलसद्धम्मिल्लसन्मल्लिकाम्।
लीलालोलितलोचनां शशिमुखीमाबद्धकाञ्चीस्रजं
दीव्यन्तीं भुवनेश्वरीमनुदिनं वन्दामहे मातरम्।। २।।

अनुवाद

जो माता कानों में हिलते हुए स्वर्णकुण्डलों को धारण किये हुए, स्थूलस्तनमण्डलवाली, मोतियों के हार से विभूषित, मल्लिका की सुन्दर माला से सुशोभित, केशचूडावाली, क्रीडापूर्वक नेत्रों का सञ्चालन करने वाली, चन्द्रमा के समान मुखवाली, काञ्ची की माला को धारण करने वाली हैं, ऐसी दिव्यस्वरूपा माता भुवनेश्वरी की प्रतिदिन हम सब वन्दना करते हैं।

ऐन्दव्या कलयावतंसितशिरोविस्तारि नादात्मकं
तद्रूपं जननि स्मरामि परमं सन्मात्रमेकं तव।
यत्रोदेति पराभिधा भगवती भासां हि तासां पदं
पश्यन्तीमनुमध्यमा विहरित स्वैरं च सा वैखरी।। १।।

अनुवाद

हे माता! विस्तारि नादयुक्त और चन्द्रकला से सुशोभित मस्तक वाले एकमात्र सत् और श्रेष्ठ तुम्हारे उस रूप का स्मरण करता हूँ, जिसमें परा नाम वाली वाणी भगवती उदित होती हैं। निश्चित ही उन दीप्तियुक्त स्थानों में पश्यन्ती वाणी, तत्पश्चात् मध्यमा वाणी और वहीं सर्वप्रसिद्धा अपनी इच्छा से या स्वेच्छानुसार वैखरी वाणी विहार करती है।

आदिक्षान्तविलासलालसतया तासां तुरीया तु या
क्रोडीकृत्य जगत्त्रयं विजयते वेदादिविद्यामयी।
तां वाचं मयि सम्प्रसादय सुधाकल्लोलकोलाहल-
क्रीडाकर्णनवर्णनीयकवितासाम्राज्यसिद्धिप्रदाम् ॥ २॥

अनुवाद

इस प्रकार की जो अकारादि से लेकर क्षवर्णपर्यन्त विलास की लालसा से युक्त चतुर्थवाणी तीनों लोकों में व्याप्त होकर विजयशालिनी है, जो वाणी अमृतरूपी लहरों के कोलाहल की क्रीडाओं के सुनने और वर्णन करने योग्य कवितारूपी साम्राज्य की सिद्धि प्रदान करने वाली है, उसको मुझमें भली प्रकार उद्भावित कर दीजिए।

कल्पादौ कमलासनोऽपि कलयाविद्धः कयाचिद् किल
त्वां ध्यात्वाङ्कुरयाञ्चकार चतुरो वेदांश्च विद्याश्च ताः।
तन्मातर्ललिते प्रसीद सरलं सारस्वतं देहि मे
यस्यामोदमुदीरयन्ति पुलकैरन्तर्गता देवताः ॥

अनुवाद

हे माता! निश्चय ही कल्प के प्रारम्भ में किसी कला से प्रेरित होकर कुशल ब्रह्मा ने भी तुम्हारा ध्यान करके वेदों और उन चौदह विद्याओं को प्रकट किया था। इसलिए हे माता ललिते! तुम प्रसन्न हो जाओ और मुझे सरल सारस्वत ज्ञान (वाक् से उत्पन्न ऐंकार रूप) को प्रदान करो जिसकी महिमा को आनन्दपूर्वक अभ्यन्तर में स्थित देवता (आत्मा इत्यादि) उत्प्रेरित करते हैं।

मातर्देहभृतामहो धृतिमयी नादैकरेखामयी
सा त्वं प्राणमयी हुताशनमयी बिन्दुप्रतिष्ठामयी।
तेन त्वं भुवनेश्वरीं विजयिनीं ध्यायामि जायां विभो-
स्त्वत्कारूण्यविकाश (सि) पुण्यमतयः खेलन्तु मे सूक्तयः॥४॥

अनुवाद

हे माता! इस प्रकार की तुम देहधारियों में धैर्यस्वरूप वाली शब्दमात्र स्वरूपवाली, प्राणस्वरूपा, अग्निस्वरूपा विन्दु के रूप में प्रतिष्ठित होने वाली हो। इसलिए परब्रह्म की सहचरी विजयशील भुवनेश्वरी का मैं ध्यान करता हूँ। तुम्हारी करुणा के द्वारा प्रकाशित होकर पवित्र मतियों को मेरे सुन्दर वचन प्रकाशित करें। नूतन–नूतन गद्य–गद्य रचनाओं को प्रकाशित करें।

त्वामश्वत्थदलानुकारमधुरामाधारबद्धोदरां
संसेवे भुवनेश्वरीमनुदिनं वाग्देवतामेव ताम् ।
तन्मे शारदकौमुदीपरिचयामोदं सुधासागर-
स्वैरोज्जागरवीचिविभ्रमजितो दीव्यन्तु दिव्या गिरः।। ५।।

अनुवाद

हे माता! मैं तुम्हारे उन्हीं पीपल के दल के समान मधुर आधार में आबद्ध उदर वाली अर्थात् त्रिकोणाकार से सुशोभित और षट्कोण से परिवेष्टित आवास वासी वाणी की देवताभुवनेश्वरी की ही प्रतिदिन वन्दना करता हूँ। अमृतसन्धि में स्वयं उत्पन्न हुई लहरों के विलास को जीतने वाली वह दिव्य वाणियाँ मुझमें शारदकौमुदी के परिचय (ज्ञान) की सुगन्ध को प्रकाशित करें।

(इस प्रकार पहले त्रिकोण लिखें, तब षट्कोण बनाकर, दिन के अष्टप्रहर के प्रमाण से अष्टदल कमल की रचना का सङ्केत मिलता है। तदनन्तर मध्य में चन्द्रकला और अनुस्वार से युक्त वाङ्मय बीज 'ऐं' लिखें। यह यन्त्रोद्धार की विधि है।)

लेखप्रस्तुतवेद्यवस्तुसुरभिश्रीपुस्तकोत्तंसितो
मातः स्वस्तिकृदस्तु मे तव करो वामोऽभिरामः श्रिया।
सद्यो विद्रुमकन्दलीसरलतासन्दोहसान्द्राङ्गुलि-
र्मुद्रां बोधमयीं दधत् तदपरोप्यास्तामपास्तभ्रमः ।। ६।।

अनुवाद

हे माता! प्रस्तुत ज्ञाप्य वस्तु का प्रतिपादन करने वाले लेख की मनोहर कान्ति से युक्त पुस्तक से सुशोभित शोभा से मनोरम तुम्हारा बायां हाथ मेरे लिए कल्याणकारी होवे तथा प्रवाललतारूपी रसलता के विलास से युक्त मनोहारिणी अङ्गुलियों वाला उससे दूसरा अर्थात्

दाहिना हाथ भी बोधमयी मुद्रा को धारण करता हुआ तत्काल ही समस्त भ्रान्तियों को दूर करने वाला होवे।

मातः पातकजालमूलदलनक्रीडाकठोरा दृशः
कारुण्यामृतकोमलास्तव मयि स्फूर्जन्तु सिद्ध्यूर्जिताः।
आभिः स्वाभिमतप्रबन्धलहरीसाकूत कौतूहला-
ऽभ्रान्तस्वान्तचतुर्मुखोचितगुणोद्गारां करिष्ये गिरम्।।७।।

अनुवाद

हे माता! पातक समूह को मूल से नष्ट करने की लीला से कठोर करुणा रूपी अमृत से कोमल और समस्त सिद्धिओं को प्रेरित करने वाली तुम्हारी दृष्टियाँ मुझमें उल्लसित होवें। इन दृष्टियों से मैं अपनी अभीष्ट प्रबन्धकरण से ब्रह्मा के समान गुणों का दर्शन करने वाली वाणी का प्रकाशन करूँगा।

त्वामाधारचतुर्दलाम्बुजगतां वाग्बीजगर्भे यजे
प्रत्यावृत्तिभिरादिभिः कुसुमितां मायालतामुन्नताम्।
चूडामूलपवित्रपत्रकमलप्रेङ्खोलखेलत्सुधा–
कल्लोलाकुलचक्रचङ्क्रमचमत्कारैकलोकोत्तराम्।। ८।।

अनुवाद

हे जननी! वाग्बीज गर्भ में (ऐंकार के मध्य में) चतुर्दल कमल के आधार पर स्थित अकारादि वर्णों की प्रत्यावृत्तियों से अर्थात् ह्रीं अं ह्रीं आं ह्रीं इं इत्यादि से हीं क्षं तक (क्षपर्यन्त) तथा प्रतिलोमरूप ह्रीं क्षं, ह्रीं हं, ह्रीं सं पुष्पित होती हुई चूडामूल अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र में पवित्र सहस्त्रदल कमल पर चपलता के साथ खेलती हुई अमृतलहरी से युक्त चक्राकार पत्रसमूह के चमत्कार से लोकोत्तर उन्नत मायालता अर्थात् ह्रींकारवल्ली की मैं वन्दना करता हूँ।

सोऽहं त्वत्करूणाटकटाक्षशरणः पञ्चाध्वसञ्चारत-
प्रव्याहृत्य मनो वसामि रसनारङ्गं ममालिङ्गतु।
श्रीसर्वज्ञविभूषणीकृतकलानिष्यन्दमानामृत-
स्वच्छन्दस्फटिकाद्रिसान्द्रितपयःशोभावती भारती।। ९।।

अनुवाद

हे माता! वह मैं तुम्हारी दया दृष्टि की शरण में पड़ा हुआ प्राणादि पञ्चवायुओं के सञ्चरणमार्ग से अथवा गाणपत्य, वैष्णव, सौर, शाक्त, शाम्भव प्रभृति पञ्चमार्गो के अनुसरण से मन को लौटाकर शरण में हूँ। अत: श्रीसर्वज्ञ भगवान् शिव की विभूषणस्वरूप चन्द्रकला से निकलते हुए अमृत और निर्मल स्फटिक पर्वत से रसित दुग्ध की सम्मिलित शोभावाली अथवा श्रीसर्वज्ञ भगवान् शिव की विभूषणीकृत चन्द्रकला से टपकते हुए अमृत के द्वारा निर्मल स्फटिक पर्वत से निकलते हुए जल की सम्मिलित शोभावाली माँ सरस्वती मेरी वाणी के रङ्गमञ्च का आलिङ्गन करें अर्थात् उस पर लीला करे।

मातर्मातृकयाविदर्भितमिदं गर्भीकृतानाहत-
स्वच्छन्दध्वनिपेयमध्यनिरतं चन्द्रार्कनिद्रागिरौ।
संसेवे विपरीतरीतिरचनोच्चारादकारावधि
स्वाधीनामृतसिन्धुबन्धुरमहो मायामयं ते मह:।।१०।।

अनुवाद

हे माता! अनाहत अर्थात् स्वेच्छा से उत्पन्न स्वछन्द ध्वनिरूपी पेय को आभ्यन्तर में धारण करने वाले, चन्द्रार्कनिद्रागिरि अर्थात् श्वासोच्छ्वास की विरमित प्रक्रिया के मार्ग पर तत्पर (स्वाधिष्ठान चक्र पर आश्रित) मात्राओं से गुम्फित (यथा—ऐं ह्रीं अं, ऐं ह्रीं आं, ऐं ह्रीं इं इत्यादि क्षपर्यन्त से गुम्फित) विलोमरीति से रचना के उच्चारण से अकार तक (ऐं ह्रीं क्षं, ऐं ह्रीं ह, ऐं ह्रीं सं, ऐं ह्रीं अं) तथा अपने वशीभूत अमृतसिन्धु के समान मनोहर अभिमत फल देने वाले तुम्हारे इस मायामय (ऐं ह्रीं) तेज की (मैं) सम्यक् आराधना करता हूँ।

तस्मान्नन्दनचारूचन्दनतरूच्छायासुपुष्पासव-
स्वैरास्वादनमोदमानमनसामुद्दामवामभ्रुवाम्।
वीणाभङ्गितरङ्गितस्वरचमत्कारोपि सारोज्झितो
येन स्यादिह देहि मे तदभित: सञ्चारिसारस्वतम्।।११।।

अनुवाद

हे माता! इसलिए इस लोक में सभी ओर प्रसृत होने वाला सारस्वत तेज मुझे दीजिए जिससे नन्दनवन की सुन्दर चन्दनवृक्षों की छाया में स्वेच्छापूर्वक पुष्पासवों का आस्वादन करने

से प्रसन्न मन वाली श्रेष्ठ देवताओं की अङ्गनाओं के वीणावादन से तरङ्गायमान स्वरों का चमत्कार भी नीरस हो जावे।

आधारे हृदये शिखापरिसरे सन्धाय मेधामयीं
त्रेधा बीजनूमनूनकरूणापीयूषकल्लोलिनीम् ।
त्वां मातर्जपतो निरङ्कुशनिजाद्वैतामृतास्वादन-
प्रज्ञाम्भश्चुलुकैः स्फुन्तु पुलकैरङ्गानि तुङ्गानि मे।।१२।।

अनुवाद

हे माता! मेधास्वरूपिणी, निरन्तर करूणामृत की लहरों से संव्याप्त बीजस्वरूप तुमको आधारचक्र में तथा शिखापरिसर अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र में तीन प्रकार से अनुबन्धित करके जपते हुए समस्त मर्यादाओं से रहित अपने अद्वैतामृत के आस्वादन में निरत ज्ञानजल के चुलुकों से अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक रोमहर्षण से मेरे अङ्ग उच्छ्वसित होते हुए उल्लसित होवें।

वाणीबीजमिदं जपामि परमं तत्कामराजाभिधं
मातः सान्तपरं विसर्गसहितौकारोत्तरं तेन मे।
दीर्घान्दोलितमौलिकीतिलमणिप्रारब्धनीराजनैर्धीरैः
पीतरसा निरन्तरमसौ वाग्जृम्भतामद्भुता।। १३।।

अनुवाद

हे माता! मैं वाणीबीज ऐंकाररूप को आधारचक्र में, कामराज बीज (क्लीं) को हृदय में तथा विसर्गसहित औकारोत्तर सकार (सौः रूप शक्तिबीज) को ब्रह्मरन्ध्र में जपता हूँ। इसलिए मस्तक पर सुशोभित मणियों से नीराजन करते हुए धीरों अर्थात् विद्वानों के द्वारा आस्वादित रस वाली यह मेरी अद्भुत वाणी निरन्तर प्रसरणशीला होवे।

चूडाचन्द्रकलानिरन्त्रगलतपीयूषबिन्दुश्रिया
सन्देहोचितमक्षसूत्रवलयं या बिभ्रती निर्भरम्।
अन्तर्मन्त्रमयं स्वमेव जपसि प्रत्यक्षवृत्यक्षरं
सा त्वं दक्षिणपाणिनाम्ब वितर श्रेयासि भूयासि मे।। १४।।

अनुवाद

हे माता! चूडा या मस्तक पर धारण की हुई चन्द्रकला से निरन्तर बहते हुए अमृतबिन्दुओं की शोभा द्वारा तदुनुरूप आकार वाले स्फटिकमणि की सुन्दर माला को धारण करती हुई अपने अन्तःकरण में अपने ही प्रत्यक्षवृत्ति अक्षर का जप करती हो, वहीं तुम दाहिने हाथ से मेरे लिए प्रचुरमात्रा में सर्वश्रेष्ठ कल्याणों को प्रकाशित करो।

बद्ध्वा स्वस्तिकमासनं सितरुचिच्छेदावदातच्छवि-
श्रेणीश्रीसुभगं भविष्णु सततं व्याजृम्भमाणेऽम्बुजे।
दीव्यन्तीमधिवामजानुरुचिरं न्यस्तेन हस्तेन तां
नित्यं पुस्तकधारणप्रणयिनीं सेवे गिरामीश्वरीम् ॥१५॥

अनुवाद

हे माता! मैं सर्वदा खिले हुए कमल पर स्फटिकमणि के खण्डों की उज्ज्वलछवि की पंक्तियों से मनोहर होने वाले स्वस्तिक आसन को बाँधकर अत्यन्तशोभायुक्त वायीं जानु पर शोभायमान हाथ से पुस्तकधारण करने में स्नेहशीला उन वाग्देवी की नित्य वन्दना करता हूँ॥

तन्मे विश्वपथीनपीनविलसन्निःसीमसारस्वत-
स्रोतोवीचिविचित्रभङ्गिसुभगा बिभ्राजतां भारती।
यामाकर्ण्य विघूर्णमानमनसःप्रेङ्खोलितैर्मौलिभि-
र्मीलद्भिर्नयनाञ्चलैः सुमनसो निन्देयुरिन्दोःकलाम्॥१६॥

अनुवाद

हे माता! इस प्रकार समस्त संसार में व्याप्त, प्रौढ़ क्रीडाओं से युक्त असीम सारस्वत स्रोत की लहरों की विचित्र भङ्गिमाओं से सुन्दर भारती मुझमें सुशोभित होवे, जिसको सुनकर विघूर्णित मनवाले देवता अथवा विद्वान् नेत्रपुटों को बन्द किये हुए तथा अपने मस्तकों को बारम्बार हिलाते हुए चन्द्रकला की भी निन्दा करें।

आदौ वाग्भवमिन्दुबिन्दुमधुरं झान्ते च कामात्मकं
योगान्ते कषयोस्तृतीयमिति ते बीजत्रयं ध्यायता।
सार्द्धं मातृकया विलोमविषयं संधाय बन्धच्छिदा
वाचान्तर्गतया महेश्वरि मया मात्राशतं जप्यते॥१७॥

अनुवाद

हे महेश्वरि! अकार के आदि में चन्द्रबिन्दु से मनोहर वाग्बीज (ऐं) औ (झ) वर्ण के अन्त में कामबीज (क्लीं) से युक्त तथा क् ष् योग अर्थात् 'क्षवर्ण के अन्त में तृतीय शक्तिबीज (सौः अथवा ह्सौंः) इस प्रकार तुम्हारे तीनों बीजों को मात्राओं सहित संसार बन्धन से मुक्त हुए मेरे द्वारा ध्यानपूर्वक विलोम विषय रूप में भी वाणी के भीतर ही (मौन होकर) मात्राशत का जप किया जाता है।

तत्सारस्वतसार्वभौमपदवीसद्यो मम द्योततां
यत्राज्ञाविहितैर्महाकविशतैः स्फीतां गिरं चुम्बताम्।
चैत्रोन्मीलितकेलिकोकिलकुहूकरावताराञ्चित-
श्लाघासिञ्चितपञ्चमश्रुतिसमाहारोपि भारोपमः॥१८॥

अनुवाद

हे माता! इसलिए शीघ्र ही मेरी सारस्वत सार्वभौम पदवी प्रकाशित होवे, जिससे सैकड़ों महाकवियों द्वारा निर्धारित निश्चित आज्ञाओं के अनुसार प्रेरित मेरी प्रौढ हुई वाणी को सुनने वाले पुरुषों के लिए वसन्तऋतु में उन्मुक्त केलि करने वाली कोयलों के कूहू–कूहू शब्दों के द्वारा प्राप्त हुई प्रशंसा से एकत्रित किया हुआ पञ्चम–स्वर का समाहार भी भार जैसा प्रतीत होवे।

वाग्बीजं भुवनेश्वरी वद वदेत्युच्चार्य वाग्वादिनीं
स्वाहा वर्णविशीर्णपातकभरां ध्यायामि नित्यां गिरम्।
वीणापुस्तकमक्षसूत्रवलयं व्याजृम्भमम्भोरुहं
बिभ्राणामरूणांशुभिः करतलैराविर्भवद्विभ्रमाम॥१९॥

अनुवाद –

मैं 'वग्बीजं (ऐं) भुवनेश्वरी (ह्रीं) वद वद वाग्वादिनीं स्वाहा' ऐसा उच्चारण करके मन्त्राक्षरों के द्वारा समस्त पातकों के भारों को दूर करने वाली, रक्तिम कान्ति वाले चारों करतलों में क्रमश नीचे के दाहिने हाथ में वीणा, नीचे के वामकर में पुस्तक, ऊपर के दक्षिण कर में अक्षमाला, ऊपर के बायें हाथ में खिले हुए कमल को धारण करने वाली, हास–विलास को प्रकट करती हुई वाणी अर्थात् माँ सरस्वती का नित्य ध्यान करता हूँ।

तन्मातः कृपया तरङ्गयतरां विद्याधिपत्यं मयि
ज्योत्स्नासौरभचौरकीर्तिकवितासेव्यैकसिंहासनम्।

कालाज्ञादिशिवावसानभवनप्राग्भारकुक्षिंभरि-
प्रज्ञाम्भःपरिपाकपीवरपराऽनन्दप्रतिष्ठास्पदम्।। २०।।

अनुवाद

हे माता! इस प्रकार तुम्हारे जप के ध्यान से मुझमें चन्द्रिकां के सौन्दर्य के समान चुरायी हुई कीर्ति वाली कविता के द्वारा सेव्यमान एक सिंहासन तथा ईश्वर के अभ्यास और ज्ञानरूपी तत्त्वज्ञान की प्राप्ति की पूर्वस्थिति के विशेष ज्ञानरूपी जल के परिणाम के महान् परमानन्द की प्रतिष्ठा का स्थानस्वरूप विद्याधिपत्य अतिशयतापूर्वक तरङ्गित होवे।

लेखाभिस्तुहिनद्युतेरविकृतं वाग्बीजमुच्चैः स्फुरत्
ताराकारकरालबिन्दुपरितो माया त्रिधा वेष्टितम् ।
पूर्णेन्दोरुदरे तदेतदखिलं पीयूषगौराक्षरं
स्रोतःसम्भ्रमसम्भृतं स्मरति यो जिह्वाञ्चले निश्चलः।। २१।।
तस्य त्वत्करुणाकटाक्षकणिकासङ्क्रान्तिमात्रादपि
स्वान्ते शान्तिमुपैति दीर्घजडता जाग्रद्विकाराग्रणीः।
तस्मादाशु जगत्त्रयाद्भुतरसाद्वैतप्रतीतिप्रदं
सौरभ्यं परमभ्युदेति वदनाम्भोजे गिरां विभ्रमैः।। २२।।

अनुवाद

हे माता! जो पुरुष वाग्बीज (ऐं) को चन्द्रमा की लेखा से युक्त करके फिर उसके ऊपर नक्षत्र के आकार का मनोहर बिन्दु अर्थात् अनुस्वार से सब प्रकार मायाबीज (ह्रीं) को अनुलोमप्रतिलोमरूप से तीन प्रकार से वेष्टित करके पूर्णचन्द्र के मध्य में प्रवाहरूप विलास से व्याप्त इस सम्पूर्ण अमृत के समान गौर वर्ण को निश्चल होकर जिह्वाग्र में स्मरण करता हैं।

उस पुरुष के अन्तःकरण में तुम्हारी करुणा कटाक्ष द्वारा वीक्षण मात्र से उद्बोधरूप विकारों में अग्रगण्य दीर्घजडता शान्ति को प्राप्त हो जाती है अर्थात् विनष्ट हो जाती है। तथा शीघ्र ही उसके कमलवत्मुख में वाणी के विलासों से तीनों लोकों में अद्वैत ज्ञान के अद्भुत रस को प्रदान करने वाला श्रेष्ठतम सौरभ्य प्राप्त हो जाता है।

आद्यो मौलिरथापरो मुखमिई नेत्रे च कर्णावुऊ
नासा वंशपुटे ऋॠ तदनुजो वर्णौ कपोलद्वयम्।

दन्ताश्चोर्ध्वमधस्तथौष्ठयुगलं सन्ध्यक्षराणि क्रमात्
जिह्वामूलमुदग्रबिन्दुरपि च ग्रीवा विसर्गी स्वरः।।२३।।

कादिर्दक्षिणतो भुजस्तदितरो वर्गश्च वामोभुज-
ष्टादिस्तादिरनुक्रमेण चरणौ कुक्षिद्वयं ते पफौ।
वंशपृष्ठभवोऽथ नाभिहृदये बादित्रयं धातवो
याद्याः सप्तसमीरणश्च क्रोध सपरः क्षः इत्यम्बिके।। २४।।

अनुवाद

हे अम्बिके! आदिवर्ण अर्थात् अकार तुम्हारा सिर है, उसके बाद वाला अर्थात् आकार (आ वर्ण) मुख है, इ ई दोनों नेत्र है, उ ऊ दोनों कान है, ऋ ॠ नासिका के दोनों वंश पुट हैं, उनके बाद के दो वर्ण अर्थात् ऌ ॡ दोनों कपोल हैं, सन्ध्यक्षर अर्थात् ए ऐ ओ औ क्रम से ऊपर और नीचे के दाँत तथा दोनों ओष्ठ हैं, ऊपर रखा जाने वाला बिन्दु अर्थात् अंकार जिह्वा का मूल है और विसर्गीस्वर अर्थात् अः तुम्हारी ग्रीवा है।२३। हे अम्बे! कादि अर्थात् कवर्ग तुम्हारी दाहिनीभुजा है, इसके आगे का वर्ग अर्थात् चवर्ग बाँयी भुजा है, टादि वर्ण तथा तादि (त वर्ग) ये अनुक्रम से तुम्हारे दाहिना तथा बाँया चरण हैं 'प' और 'फ' वर्ण तुम्हारी दोनों कुक्षि है, ब भ म– ये क्रमशः पीठ पर होने वाला वंश (रीढ़ की हड्डी) नाभि और हृदय हैं, य इत्यादि सप्त अर्थात् य र ल व श ष स यह सात तुम्हारी सप्त धातुएँ (त्वचा, असृक्, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र) अथवा (आधार, लिङ्ग, नाभि, हृदय, मुख, भ्रूमध्य, सिर) हैं। 'स' से परे अर्थात् 'ह' वर्ण समीरण (प्राणवायु) है तथा 'क्ष' वर्ण तुम्हारा क्रोध अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र है।२४।

एवं वर्णमयं वपुस्तव शिवे लोकत्रयव्यापकं
योऽहंभावनया भजत्यवयवेष्वारोपितैरक्षरैः।
मूर्तीभूय दिवावसानकमलाकारैःशिरःशार्यिभि-
स्तं विद्याः समुपासते करतलैर्द्वैष्टिप्रसादोत्सुकाः।।२५।।

अनुवाद

हे शिवे! इस प्रकार से जो पुरुष तीनों लोकों में व्याप्त शरीर के अङ्गों में आरोपित अक्षरों के द्वारा अहंभावना से (मैं ही वर्णमय रूप हूँ इस भावना से) तुम्हारे वर्णमयशरीर को भजता है, उस पुरुष के सिर में सन्निविष्ट दिवसावसान के समय कमल के आकार की भाँति करतलों के द्वारा

दृष्टिप्रसादोत्सक (माँ हम पर दृष्टि से ही कृपा करेंगी, इस उत्सुकता से) समस्त विद्यायें भलीभाँति प्राप्त हो जाती हैं।

ये जानन्ति जपन्ति सन्ततमभिध्यायन्ति गायन्ति वा
तेषामास्यमुपास्यते मृदुपदन्यासैर्विलासैर्गिराम् ।
किं च क्रीडति भूर्भुवः स्वरभितः श्रीचन्दनस्यन्दिनी
कीर्तिः कार्तिकरात्रिकैरवसभासौभाग्यशोभाकरी।। २६।।

अनुवाद

हे माता! जो पुरुष इस प्रकार तुम्हारे वर्णमय शरीर को जानते हैं, पूजन करते हैं, निरन्तर ध्यान करते हैं अथवा गायन करते हैं उनका मुख वाणी के कोमल पदों की विशिष्ट रचनाओं के रूपधारी विलासों से सुशोभित होता है। अधिक क्या कहें, कार्तिक की रात्रि में सुविकसित कुमुदसमूह के समान सुन्दर कान्ति प्रदान करने वाली भूःभुवः स्वः अर्थात् तीनों लोकों में व्याप्त अमृतवर्षिणी उनकी कीर्ति परिस्फुरित होती है।

मायाबीजविदर्भितं पुनरिदं श्रीकूर्मचक्रोदितं
दीपाम्नायविदो जपन्ति खलु ये तेषां नरेन्द्राः सदा।
सेवन्ते चरणौ किरीटवलभीविश्रान्तरत्नाङ्कुर-
ज्योत्स्नामेदुरमेदिनीतलरजोमिश्राङ्गरागश्रियः ।। २७।।

अनुवाद

हे माता! दीपाम्नाय के ज्ञाता जो पुरूष तुम्हारे मायाबीज से विदर्भित श्रीकूर्मचक्रस्वरूपधारी इस वर्णमय शरीर का जप करते हैं, निश्चय ही उनको चरणों को मुकुट की वलभियों में जड़े हुए रत्नों के अङ्कुरों की दीप्ति से युक्त पृथ्वीतल की रजकणों से मिली हुई अङ्गराग की शोभा धारण करने वाले राजा सदैव सेवा करते हैं। (दीपाम्नाय में आठ कोष्ठ लिखकर प्रत्येक कोष्ठ में अकरादि सभी स्वर दो–दो करके जोड़ों में लिखा जाता है, फिर कादि सभी वर्णो को समूह अङ्कित होते हैं। जिस कोष्ठ में स्थानाधिपति देवता के नाम का पहला अक्षर मिलता है, उसी के अनुसार स्थान चुनकर माया बीज से गुम्फित मातृकामय शरीरका जप किया जाता है)

श्रीबीजं सकलाक्षरादिषु पुनः क्रोधाक्षरान्ते भवे-
देवं यो भजते च ते तनुमिमां तस्याग्रतो जाग्रती।

लक्ष्मीः सिन्धुरदानगन्धलहरीलोभान्धपुष्पन्धय-
श्रेणीबन्धुरशृङ्खलानियमितेवापैति नैव क्वचित्।।२८।।

अनुवाद

हे अम्ब! समस्त अक्षरों के बाद में श्री बीज हो और क्रोधाक्षर अर्थात् क्षवर्ण के अन्त में श्री बीज हो इस प्रकार से जो तुम्हारे इस वर्णमय शरीर को अर्थात् श्रीबीज से गुम्फित मातृकामय शरीर को भजते है, उसके समक्ष विनिद्रा (सदैव जाग्रत) हाथी के मद की गन्ध की लहरियों के लोभ में अन्धे हुए भ्रमरों के समूह की सुन्दर शृङ्खला से बँधी हुई पद्मालया लक्ष्मी कभी भी दूर नहीं जाती हैं।

यस्त्वां विद्रुमपल्लवद्रवमयीं लेखामिवालोहिता-
मात्मानं परितः स्फुरत्त्रिवलयां मायामभिध्यति।
तस्मै निन्दितचन्दनेन्दुकदलीकान्तारहारस्रजो
निःश्वासभ्रमबाष्पदाहगहना मूर्च्छन्ति तास्तास्त्रियः।।२९।।

अनुवाद

हे माता! अपने चारों ओर प्रवाल के अङ्कुरों के समान प्रसरित स्वरूप वाली सब ओर से लाल वर्ण की लेखा के समान चमकते हुए त्रिवलय वाली माया ह्रींकाररूपिणी तुम्हारा जो पुरुष अपने चारों ओर निरन्तर ध्यान करता है उसके लिए चन्दन, चन्द्रमा, कदलीदल की मालाओं को भी निन्दित कर देने वाली और निःश्वास के मोचन से निकली हुई ऊष्मा की दाह से व्याकुल होने वाली कोमलाङ्गिनी स्त्रियाँ मोह को प्राप्त हो जाती है।

मातः श्रीभगमालिनीत्यभिधया दिव्यागमोत्तंसितां
त्वामानन्दमयीमनुस्मरति यस्तं नाम वामभ्रुवः।
बाहुस्वस्तिकपीडितैः स्तनतटैर्दैनयाञ्चितैश्चाटुभि-
र्नीरन्ध्रैः पुलकाङ्कुलैर्मुकुलितैर्ध्यायन्ति नेत्राञ्चलैः।।३०।।

अनुवाद

हे माता! जो पुरुष श्रीभगमालिनी (ऐं ह्लीं आनन्दमयि श्रीभगमालिनि स्वाहा) इस नाम से दिव्य आगमों को मस्तक पर धारण करने वाली आनन्दमयी तुम्हारा अनुचिन्तन करता है, उस पुरूष को स्त्रियाँ सुन्दर बाहुओं से घिरे हुए स्तनतटों—द्वारा दीनता से युक्त चाटुकृतियों से पुलकित

रोमाञ्चों से तथा नियमित नेत्राञ्चलों से सदैव ध्यान करती है।

यस्त्वां ध्यायति रागसागरत्सिन्दूरनौकान्तर-
स्वैरोज्जागरपद्मरागनलिनीपुष्पासनाध्यासिनीम्।
बालादित्यसपत्नरत्नरुचिरप्रत्यङ्गभूषारुचि-
श्रेणीसम्मिलिताङ्गरागवसनासतस्य स्मरन्त्यङ्गनाः॥३१॥
कर्पूरं कुमुदाकरं कमलिनीपत्रं कलाकौशलं
कूजत्कोकिलकामिनीकुलकुहूकल्लोलकोलाहलम्।
शङ्कन्ते प्रलयानलस्मरमहापस्मारवेगातुराः
कम्पन्ते निपतन्ति हन्त न गिरं मुञ्चन्ति शोचन्ति च॥३२॥

अनुवाद

हे माता! रक्तसागर में तैरती हुई सिन्दूरी नौका के मध्य में स्वेच्छा से विकसित पद्मराग के समान नलिनीपुष्प के आसन पर विराजमान तुम्हारे इस स्वरूप का जो ध्यान करता है, उदित होते हुए सूर्य की अरुणकिरण रूपी अङ्कुरसमूह को भी तिरस्कृत करने वाले रत्नों से निर्मित प्रत्यङ्ग में सज्जित भूषणों की कान्तियों के समूह से मिश्रित अङ्गराग वस्त्रों को धारण करने वाली ललनायें उसका स्मरण करती हुई कर्पूर, कुमुदसमूह, कमलिनीपत्र और समस्त कलाओं के नैपुण्य को तथा कूजन करती हुई कोकिलकामिनी समूह के कुहू–कुहू शब्द के कल्लोल के कोलाहल की निन्दा करती हैं तथा प्रलयानल के समान सन्तापकारी कामदेव के अपस्मार सदृश वेग से आतुर हुई काँपती हैं, पृथिवी पर गिर पड़ती हैं, बोल नहीं पाती हैं और लब्धसंज्ञ (चेतना प्राप्त करने पर) होने पर शोक करती हैं कि हन्त! वह मुझे नहीं मिला।३१,३२।

श्रीमृत्युञ्जयनामधेयभगवच्चैतन्यचन्द्रात्मिके
ह्रींकारि प्रथमातमांसि दलय त्वं हंससंजीविनि।
जीवं प्राणविजृम्भमाणहृदयग्रन्थिस्थितंमे कुरु
त्वां सेवे निजबोधलाभरभसा स्वाहाभुजामीश्वरीम्॥३३॥

अनुवाद

हे श्रीमृत्युञ्जयनामधेय भगवच्चैतन्यचन्द्रात्मिके! हे ह्रींकारि! हे हंससंजीविनि! मैं स्वज्ञानप्राप्ति के हर्ष से स्वाहा का भोग करने वाले देवों की ईश्वरी तुम्हारा आश्रय लेता हूँ। इसलिए मेरे पहले के अज्ञानादिकों को विदीर्ण करो और फिर मेरे जीव को प्राणवायु के द्वारा उत्फुल्लित हृदयग्रंथि

पर स्थित करो।

एवं त्वाममृतेश्वरीमनुदिनं राकानिशाकामुक-
स्वान्ते सन्ततभासमानपुषं साक्षाद्यजन्ते तु ये।
ते मृत्योः कवलीकृतत्रिभुवनाभोगस्य मौलौ पदं
दत्त्वा भोगमहोदधौ निरवधि क्रीडन्ति तैस्तैः सुखैः।।३४।।

अनुवाद

हे माता! जो पुरुष प्रत्येक दिन इस प्रकार से पूर्णिमा के चन्द्र के मध्य में निरन्तर भासमान शरीर वाली साक्षात् अमृतेश्वरी तुमको पूजते हैं वे पुरुष तीनों लोकों को समग्र भाव से खाने के लिए ग्रास बनाने वाली मृत्यु के मस्तक पर पैर रखकर भोगसागर में समस्त सुखों के सहित चिरकाल तक विचरण करते हैं।

जाग्रद्बोधसुधामयूरवनिचयैराप्लाव्य सर्वा दिशो
यस्याः कापि कला कलङ्करहिता षट्चक्रमाक्रमाति।
दैन्यध्वान्तविदारणैकचतुरा वाचं परां तन्वती
सा नित्या भुवनेश्वरी विहरतां हंसीव मन्मानसे।।३५।।

अनुवाद

जिसकी कलङ्करूपी रहित स्वच्छ कोई कला (तुरीयावस्था) जाग्रत ज्ञानरूपी सुधा के किरणसमूहों से सभी दिशाओं को आप्लावित करके षट्चक्र को भेदकर शीघ्र ही उदित होती है नित्य चैतन्यरूपा अज्ञानरूपी प्रगाढान्धकार को निराकृत करने में एकमात्र चतुर परानाम्नी वाणी का विस्तार करने वाली वह माँ भुवनेश्वरी मेरे मानस में हंसी के समान विहार करे।

त्वं मातापितरौ त्वमेव सुहृदस्त्वंभ्रातरस्त्वं सखा
त्वां विद्या त्वमुदारकीर्तिचरितं त्वं भाग्यमत्यद्भुतम्।
किम्भूयः सकलं त्वमीहितमिति ज्ञात्वा कृपाकोमले
श्रीविश्वेश्वरि संप्रसीद शरणं मातः परं नास्ति मे ।। ३६।।

अनुवाद

हे माता! हे कृपाकोमले! हे विश्वेश्वरि! पूर्णरूप से प्रसन्न हो जाओ, क्योंकि तुम्हीं मेरे

माता—पिता हो, तुम्ही मित्र हो, तुम्ही मेरे बन्धु—बान्धव हो, तुम्ही मेरे सखा हो, तुम्ही प्रभूतकीर्ति का प्रवर्तन करने वाली हो, तुम्ही प्रचुरतर भाग्य हो। अधिक क्या कहें? तुम्हीं सभी कुछ वाञ्छित हो। हे माता! तुमसे श्रेष्ठ मेरा शरणदाता अन्य कोई नहीं है।

श्रीसिद्धिनाथ इति कोपि युगे चतुर्थे प्राविर्बभूव करुणावरुणालयेऽस्मिन्।
श्रीशम्भुरित्यभिधया स मयि प्रसन्नं चेतश्चकार सकलागमचक्रर्ती।। ३७।।

अनुवाद

करुणा से युक्त इस वरुणालय नामक ग्राम में (नर्मदा तट के निकट) श्रीसिद्धिनाथ इस नाम के कृपासागर कोई महानुभाव चतुर्थ युग अर्थात् कलियुग में उत्पन्न हुए जिन्होंने समस्त वेद—वेदान्त चक्र के ज्ञाता श्रीशम्भु इस नाम से भी विख्यात होकर मुझ पर स्नेह किया (मन को प्रसन्न किया)।

तस्याऽऽज्ञया परिणतान्वयसिद्धविद्याभेदास्पदैः स्तुतिपदैर्वचसां विलासैः
तस्मादनेन भुवनेश्वरि वेदगर्भे सद्यः प्रसीद वदने मम सन्निधेहि।। ३८।।

अनुवाद

हे भुवनेश्वरि! हे देवगर्भे! क्योंकि मुझ पर श्रीशम्भु ने स्नेह किया इस हेतु तुम भी शीघ्र मेरे प्रति प्रसन्न हो जाओं तदनन्तर (मेरे मुख में) उनकी आज्ञा के परिणामस्वरूप प्राप्त अन्वययुक्त सिद्ध विद्याओं के भेदों से परिपुष्ट वाणी के विलास युक्त स्तुतिपदों के सहित स्थित हो जाओ।

येषां परं न कुलदैवतमम्बिके त्वं तेषां गिरा मम गिरो न भवन्ति मिश्राः।
तैस्तु क्षणं परिचिते विषयेऽपि वासो मा भूत्कदाचिदपि सन्ततमर्थये त्वाम्।। ३९।।

अनुवाद

हे सर्वेश्वरि! मैं तुमसे निरन्तर प्रार्थना करता हूँ कि हे अम्बिके! जिन पुरूषों की तुम सर्वश्रेष्ठ कुलदेवता नहीं हो उन पुरूषों की वाणी के साथ मेरी वाणियाँ मिश्रित न हों तथा उन पुरुषों के साथ वर्ण्य—विषय में अथवा परिचय प्राप्त होने पर भी पूर्वजों के देश में क्षणमात्र के लिए भी निवास न करना पड़े।

श्रीशम्भुनाथ! करुणाकर! सिद्धिनाथ! श्रीसिद्धिनाथ! करुणाकर! शम्भुनाथ।
सर्वापराधमलिनेऽपि मयि प्रसन्नं चेतः कुरुष्व शरणं मम नान्यदस्ति।। ४०।।

अनुवाद

हे श्रीशम्भुनाथ! हे करुणाकर सिद्धिनाथ! हे श्रीसिद्धिनाथ! करुणाकर शम्भुनाथ! समस्त अपराधों के द्वारा कलुषित होते हुए भी मुझ पर मन प्रसन्न करो, क्योंकि मेरे लिए कोई अन्य शरण नहीं है।

इत्थं प्रतिक्षणमुदश्रुविलोचनस्य पृथ्वीधरस्य पुरतः स्फुटमाविरासीत्।
दत्त्वा वरं भगवती हृदयं प्रविष्टा शास्त्रैः स्वयं नवनवैश्च मुखेऽवतीर्णा॥ ४१॥

अनुवाद

इस प्रकार गुरुस्मरणादि से प्रतिक्षण अश्रुपूरित नेत्रों वाले पृथ्वीधर के सम्मुख भगवती भुवनेश्वरी साक्षात् प्रकट हुई और वरदान देकर हृदय में प्रविष्ट हुई तथा गद्य पद्यादिमय नवातिनव शास्त्रों को करती हुई उनके मुख से अवतीर्ण हुई।

वाक्सिद्धिमेवमतुलामवलोक्य नाथः श्रीशम्भुरस्य महतीमपि तां प्रतिष्ठान्।
स्वस्मिन् पदे त्रिभुवनागमवन्द्यविद्यासिंहासनैकरुचिरे सुचिरं चकार ॥ ४२॥

अनुवाद

श्रीशम्भुनाथ जी ने इस स्तोत्र की अतुलवाक्सिद्धि तथा इस लोक में उसकी महती प्रतिष्ठा को देखकर तीनों लोकों में आगमशास्त्रों के द्वारा स्तुत्य एकमात्र सुन्दर विद्यासिंहासनरूपी अपने पद पर अनन्त–काल के लिए पाठमात्र से सकलसिद्धिप्रदान करने वाली इस स्तोत्र की महती प्रतिष्ठा को प्रतिष्ठित कर दिया।

भूमौ शय्या वचसि नियमः कामिनीभ्यो निवृत्तिः
प्रातर्जातीविटपसमिधादन्तजिह्वाविशुद्धिः।
पत्रावल्यां मधुरमशनं ब्रह्मवृक्षस्य पुष्पैः
पूजाहोमौ कुसुमवसनालेपनान्युज्ज्वलानि॥ ४३॥

अनुवाद

भूमि पर शयन, वाणी पर संयम, स्त्रियों से निवर्तन तथा प्रातःकाल जातीवृक्ष की लकड़ी से दाँत और जिह्वा को शुद्ध करना, पत्तल में मीठा भोजन करना, ब्रह्मवृक्ष अर्थात् पलाश के पुष्पों

से पूजा और होम, कुसुमवस्त्र और उज्ज्वल आलेप करना चाहिए।

इत्थं मासत्रयमविकलं यो व्रतस्थः प्रभाते
मध्याह्ने वाऽस्तमनसमये कीर्तयेदेकचित्तः।
तस्योल्लासैः सकलभुवनाश्चर्यभूतैः प्रभूतैः
विद्याः सर्वाः सपदि वदने शम्भुनाथ प्रसादात्।।४४।।

अनुवाद

इस प्रकार जो पुरूष निरन्तर तीन मास तक व्रतस्थ होकर प्रातःकाल, मध्याह्न अथवा सायंकाल में एकचित्त होकर इसका कीर्तन करे, गुरुदेव श्री शम्भुनाथ के प्रसाद से सम्पूर्ण लोकों की आश्चर्यभूत शीघ्र ही प्रस्फुटित होने वाली गद्यपद्यादिरूप उल्लासों से युक्त सम्पूर्ण विद्यायें अतिशीघ्र उसके मुख से प्रादुर्भूत हो जाती है।

व्रतेन हीनोऽप्यनवाप्तमान्त्रः श्रद्धाविशुद्धोऽनुदिनं पठेद्यः।
तस्यादि वर्षादनवद्यसद्यः कवित्वहृद्याः प्रभवन्ति विद्याः।। ४५।।

अनुवाद

जो पुरूष व्रत से हीन तथा मन्त्रप्राप्ति के बिना भी श्रद्धा से विशुद्ध मन वाला होकर निरन्तर इस स्तोत्र का जप करे उस पुरूष के भी वर्ष भर में निर्दोष मनोहर सद्यः (शीघ्र ही) कवित्तवशक्ति की विद्याएँ उत्पन्न हो जाती है।

कोऽप्यचिन्त्यः प्रभावोऽस्य स्तोत्रस्य प्रत्ययावहः।
श्रीशम्भोराज्ञया सर्वाः सिद्धयोऽस्मिन् प्रतिष्ठिताः।। ४६।।
इति श्री सकलागमाचार्यचक्रवर्तिश्रीपृथ्वीधरनाचार्यविरचितं
श्रीभुवनेश्वरीमहास्तोत्रं सम्पूर्णम्।

अनुवाद

इस स्तोत्र का कुछ अचिन्त्य प्रभाव अपनी ओर आकर्षित करने वाला प्रीतिजनक है, क्योंकि श्रीशम्भु की आज्ञा से इस स्तोत्र में अणिमादिक सभी सिद्धियाँ प्रतिष्ठित हैं अर्थात् यह स्तोत्र अधिन्त्यमहिमा मण्डित है।

सकल आगमों के आचार्यों में चक्रवर्ती मूर्धन्य श्री पृथ्वीधराचार्य विरचित
श्रीभुवनेश्वरी महास्तोत्र सम्पूर्ण हुआ।

अनुवादिका – डॉ० अवन्तिका त्रिपाठी

❁❁❁❁

श्रीललितासहस्रनामस्तोत्र की महिमा

श्री गुरुमुख से

श्रीविद्या साधना में जैसे श्रीयन्त्र और श्री मन्त्र का महत्व है वैसे ही श्री ललितासहस्रनाम स्तोत्र का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।

श्रीललिता सहस्रनामस्तोत्र की महिमा का शब्दों में वर्णन करना असम्भव है, इसीलिये भगवान् हयग्रीव ने कहा है कि ''यथैव गोप्या श्रीविद्या तथा गोप्यमिदं मुने'' जैसे श्रीविद्या का यन्त्र गुप्त रखना चाहिये, उसी प्रकार ललितासहस्रनाम को भी अनधिकारी को नहीं देना चाहिए।

अत: ब्रह्माण्ड पुराण में इसकी महिमा का जो वर्णन प्राप्त होता है, उसी का संक्षेप में वर्णन किया जा रहा है।

महर्षि अगस्त्य ने भगवान् हयग्रीव से प्रश्न किया भगवन् आपने श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरी के परम अद्भुत चरित्र में सर्वप्रथम श्रीमाता का प्रादुर्भाव, पट्टाभिषेक, भण्डासुर का वध एवं महावैभव शाली श्रीपुर का वर्णन किया, श्रीपञ्चदशाक्षरी मंत्र महाषोढादि न्यास, अन्तर्याग, वहिर्याग, महायाग का पूजाक्रम में वर्णन किया, पुरश्चरण खण्ड में मन्त्र जप करने का विधान होमप्रकरण में सब कामनाओं की सिद्धि के लिए विविध होम सामग्रियों, श्रीयन्त्र, श्रीविद्या और श्री गुरुतत्त्व तथा रहस्यखण्ड में गुरु देवता मन्त्र का सामरस्य वर्णन किया। स्तोत्रप्रकरण में अनेक प्रकार की स्तुतियां संगीतश्यामला और वार्ताली सहस्रनामस्तोत्र का उपदेश किया, हे दयानिधे सर्वज्ञ भगवन् मेरा यह संशय हो रहा है कि– क्या आपको यह विस्मरण को गया या जानते हुए भी उपेक्षा की या मैं उसको सुनने का अधिकारी नहीं हूँ।

अत: आप कृपा करके संशय दूर करे कि किस कारण से आपने श्रीललितासहस्रनामस्तोत्र का वर्णन नहीं किया।

इस प्रकार महर्षि अगस्त्य के पूछने पर भगवान् हयग्रीव परम प्रसन्न होकर बोले हे महर्षे, सावधान होकर सुनो, इसका कारण बताता हूँ– यह परम रहस्य अत्यन्त गोपनीय स्तोत्र है। इसी कारण इसको प्रगट नहीं किया भक्तिश्रद्धा से एवं उत्कट उत्कण्ठा से पुन: जिज्ञासा कर रहे हो इस लिए बता रहा हूँ। परन्तु दुष्ट, शठ, अविश्वासी, नास्तिक जो श्रीमाता का भक्त न हो, उसको कभी नहीं बताना।

सदाचारी शुद्ध बुद्ध श्रीमाता का उपासक ही इस का अधिकारी है।

तन्त्रशास्त्रों में जितने सहस्रनामों का वर्णन है उन सब में यह सर्वश्रेष्ठ है, जैसे समस्त मन्त्रों में श्रीविद्या का मन्त्र– श्रीविद्याओं में कादिविद्या पुरों में श्रीपुर तथा श्रीविद्या उपासकों में श्रीसदाशिव श्रेष्ठ हैं, उसी तरह समस्त सहस्रनामों में यह श्रेष्ठ कहा गया है। इस के पठन मात्र से भगवती श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरी प्रसन्न होकर सभी कामनाओं को पूर्ण कर देती हैं।

अत: श्रीमाता की प्रसन्नता के लिए इसका निरन्तर पारायण करना चाहिए। इन हज़ार नामों से श्रीमन्त्र पर बिल्व पत्र, तुलसी पुष्पों से पूजन करने से श्रीललितामाता शीघ्र ही प्रसन्न हो जाती है।

श्रीयन्त्र का पूजन तथा पञ्चदशाक्षरी श्रीविद्यामन्त्र का जप करके इसका पाठ करना चाहिए। पूजा जप करने में असमर्थ होने पर केवल सहस्रनाम का पाठ कर लेना चाहिए, इससे सम्पूर्ण पूजा और जप का फल हो जाता है।

भगवान् हयगीव ने कहा कि ललितासहस्रनाम का पाठ कर लेने से श्रीविद्या उपासना का पूर्ण फल क्यों होता है– इसका कारण बताता हूँ, एकसमय की बात है श्रीललिता माता ने अपने भक्तों का कल्याण करने के लिये वशिनी आदि आठ वाणी की देवताओं को आदेश दिया कि तुम लोगों ने मेरी कृपा से वाणी का चातुर्य प्राप्त किया है और श्रीयन्त्र के रहस्य को जानती हो।

अत: मेरे नामों का एक ऐसा स्तोत्र की रचना करो, जिसके पाठ करने से भक्तों पर मेरी तत्काल प्रसन्नता हो जाय।

वाग् देवताओं ने पराम्बा के आदेशानुसार ललितासहस्रनाम की रचना की, कदाचित् श्रीमाता की सभा में समस्त देवी देव विराजमान थे, तो वाग् देवताओं ने सहस्रनामों से करबद्ध प्रार्थना की। स्तोत्र सुनकर श्रीललिताम्बा प्रसन्न होकर सभी उपस्थित देवताओं से बोलीं कि मेरी आज्ञा से वाग्देवियों ने इस स्तोत्र की रचना की है, आप लोग भी इसका पारायण करे और मेरे भक्तों में इसका प्रचार करें और सबको कहें कि इसका पाठ मात्र करने से श्रीललितात्रिपुरसुन्दरी प्रसन्न होकर सभी कामनाओं को पूर्ण कर देती हैं। उनकी प्रसन्नता से सब मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं, इसमें जरा भी संशय नहीं है।

अत: आदर पूर्वक इस स्तोत्र का प्रतिदिन पारायण करना चाहिए।

उसी दिन से ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, वशिनी आदि आठ वाग्देवता भी इसका प्रतिदिन

पारायण करते हैं। अत: श्रीविद्या उपासक भक्त को इस का प्रतिदिन पाठ करना चाहिए।

इस ललितासहस्रनामस्तोत्र में एक हज़ार नाम हैं इस में पुनरुक्ति दोष यानि एक बार कहा हुआ नाम दुबारा नहीं कहा गया है, और स्तोभ यानि च, तु, ही, वै आदि पाद पूर्ति के लिये कोई व्यर्थ शब्द नहीं है। श्रीमाता का आनखशिख सौन्दर्यलावण्य का वर्णन है और ऐश्वर्य, विभूति बल, पराक्रम, वैभव, सिद्धियां आदि गुणों का वर्णन किया है। अत: ये नाममात्र न होकर मन्त्र स्वरूप माने गये हैं।

अत: इस का पाठ मात्र करने से सम्पूर्ण कार्य सिद्ध हो जाते हैं। यह रहस्यातिरहस्य स्तोत्र है और श्रीललिताम्बा को शीघ्र प्रसन्न करने वाला है। इसके समान पहले कोई स्तोत्र नहीं था और आगे भी नहीं होगा। इसके पाठ मात्र से सब रोगों का नाश होता है तथा समस्त ऐश्वर्य की प्राप्ति अकाल मृत्यु का निवारण समस्त भय विघ्न बाधाओं की निवृत्ति होती है।

हमारे शास्त्रों में व्रत, उपवास तथा दान, पुण्य, धर्म, तीर्थ, यात्रा आदि जितने पुण्य कार्यों का वर्णन है, उन सब का फल इसके पाठ मात्र से हो जाता है, इतना ही नहीं इसमें लिखा है कि सहस्रनाम स्तोत्र के एक नाम में जितनी पाप निवारण करने की शक्ति है, उतना पाप चौदह भुवन मिलकर भी नहीं कर सकते हैं।

''यन्नैक नाम्नो या शक्ति: पातकानां निवर्तने।
तन्निवर्त्य ह्यघं कुत्र नालं लोकाश्चतुर्दश।।'' (ब्र०पु०)

कलियुग में धर्मानुष्ठान आदि विधिवत् होने असम्भव है, अत: पापों की निवृत्ति और पुण्य फल प्राप्ति के लिए श्रीललितासहस्रनाम स्तोत्र को छोड़कर दूसरा कोई सहारा नहीं है।

''कलौ पापबहुले धर्मानुष्ठान–वर्जिते।
नामानुकीर्तनं त्यक्त्वा नृणां नान्यत् परायणम्।।''

श्रीयन्त्र की पात्रासादन पूर्वक नवावरण पूजा करके पत्र पुष्प फल आदि से एक बार भी सहस्रनामों से पूजन करने से अपार पुण्य फल की प्राप्ति होती है, ऐसा ब्रह्मण्ड पुराण में लिखा है–

एभिनार्मसहस्रैस्तु–श्रीचक्रं योऽर्चयेत् सकृत्।
तस्य पुण्यफलं वक्तुं न शक्नोति महेश्वर:।।

सा वेत्ति ललिता देवी स्वचक्रार्चनलं फलम्–
अन्ये कथं विजानीयुः ब्रह्माद्याः स्वल्पमेधसः।।

इसी प्रकार सांसारिक समस्त कार्यो की सिद्धि के लिये इसमें कई प्रयोग लिखे हैं, जिनको गुरुमुख से समझकर करने से सत् सत् कार्यों की सिद्धि होती हैं। इसके लक्षार्चन अनुष्ठान करने से बड़ा से भी बड़ा कार्यसिद्ध हो जाता है, इसकी विधि हमारे श्रीविद्यारत्नाकर में लिखी है, इसी प्रकार कोट्यिर्चन भी किया जाता है।

फिर भगवान् हयग्रीव अगस्त्य मुनि से बोले कि यह सहस्र नाम मैंने श्रीललिताम्बा की आज्ञा से तुम को बताया है, स्वेच्छा से नहीं कहा है।

अतः इसका निरन्तर पारायण करते रहना। भगवान् हयग्रीव इस प्रकार श्रीललिताम्बा का ध्यान करके आनन्दमग्नहृदय हो गये और गात्र में पुलकावलि व्याप्त हो गयी।

इस प्रकार ब्रह्माण्ड पुराण में कहा गया सहस्रनाम का माहात्म्य का कुछ अंश प्रस्तुत किया गया है। इससे साधकों की श्रद्धाभावना जाग्रत होगी और कल्याणमयी पराम्बा भगवती श्रीललितात्रिपुरसुन्दरी की उपासना में तत्पर होंगे। नामार्चन करने एवं सहस्रनाम का पाठ करते समय एक–एक नाम मंत्र के अर्थों का बोध होने से आनन्द की अनुभूति होती है। इसी उद्देश्य से श्रीललितासहस्रनाम के प्रत्येक नामों का हिन्दी शब्दार्थ भावार्थ साधकों के लिए प्रस्तुत है।

(१) **श्रीमाता**– श्रीमाता से यह भी आभास होता है कि वे श्री की माता है। श्री का अर्थ है लक्ष्मी या सरस्वती अथवा इसका अर्थ धातृ भी है। श्री शब्द सम्पन्नता, वैभव, सौन्दर्य और ऐश्वर्य का भी प्रतीक है। भगवती– परमशिव की अर्धाङ्गिनी और ब्रह्मा, विष्णु, महेश त्रिदेवों की माता हैं। वे ही परम भट्टारिका हैं। श्री का अर्थ होता है जगत एवं माता का अर्थ होता है जननी अर्थात् जगत–जननी।

(२) **श्रीमहाराज्ञी**– समस्त ब्रह्माण्ड की नियंत्रक, जिसने उसकी रचना की और उसी में उसका निवास है। 'राज्ञी' शब्द का एक भाग एक मंत्र है, जिसे मायाराज्ञी कहते हैं अथवा राज्ञी शब्द मायाराज्ञी मंत्र का ही एक अंग है।

करोड़ों देवता और देवियाँ अपनी शक्ति और सत्ता इन्हीं परम भट्टारिका महाशक्ति से प्राप्त करती हैं और उनके नाम का सहारा लेकर कार्य करती हैं। इनकी शक्ति अनन्त और इनके रूप और नाम भी अनन्त है।

(३) श्रीमत्–सिंहासनेश्वरी– राजा जिस आसन पर बैठते हैं, उसे सिंहासन कहते हैं। वह सर्वोत्तम आसन होता है। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि और आज्ञा चक्रों के ब्रह्मा आदि देवताओं की मूर्तियों से छः आधार कमलों के मध्य में अर्थात् कर्णिकाओं में उन्नत ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सहस्रदल कमल की कर्णिका के मध्यभाग में स्थित महात्रिकोणरूपी आसन के ऊपर विराजमान हैं।

(४) चिदग्निकुण्डसम्भूता– जिन्होंने चिद्–अग्निकुंड से जन्म लिया है। यहाँ पर केवल अग्नि शब्द का ही प्रयोग नहीं है, वरन् अग्नि का विशेषण चदि् भी है। चिद् का अर्थ है– शुद्ध ज्ञानशक्ति तथा अग्नि भगवती त्रिपुरसुन्दरी का साक्षात् स्थूलस्वरूप। शुद्धज्ञान एवं ब्रह्म ही अग्नि की देवी (कुण्ड) है। संभूता का अर्थ है– जन्म या प्रादुर्भाव। अर्थात् समस्त देवों के तेज से उस कल्याणकारी देवी का प्रार्दुभाव हुआ।

(५) **देवकार्यसमुद्यता** – देवताओं के उद्देश्य को पूरा करने के लिए सदैव तत्पर। 'यद्यपि देवी अनादि है, किन्तु फिर भी देवताओं की कार्यसिद्धि के लिए बार–बार अवतरित होती है।

(६) **उद्यद्भानुसहस्राभा** – उदय होते हुए प्रातःकालीन सहस्रों सूर्यो की अरुणिमा के तुल्य तथा सूर्योदय से पूर्व विकसित जपा पुष्पों के समान रक्तवर्ण जाज्वल्यमान स्वरूप भगवती।

(७) **चतुर्बाहुसमन्विता** – चार भुजाएँ हैं। सम्प्रदाय के अनुसार जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय नाम चार अवस्थाओं को श्रीत्रिपुरेश्वरी की चार भुजाओं के रूप में प्रतिपादित है। त्रिपुरेश्वरी के चार अंग दशाओं के उपलक्षण मात्र हैं।

(८) **रागस्वरूपपाशाढ्या** – उनके हाथो में जो आयुध हैं ये तीन प्रकार के हैं। राग पाश–स्वरूप है अथवा इसे इच्छाशक्ति का एक विलक्षण मानसिक रूपान्तरण भी कह सकते हैं। पाश स्थूल रूप है और वासना सर्वोच्च रूप। यह ऊपर के बायें हाथ में है।

(९) **क्रोधाकाराङ्कुशोज्ज्वला** – वे अपने दाहिने हाथ में अंकुश लिये हुए जाज्वल्यमान हो रही हैं। अंकुश घृणा और सांसारिक ज्ञान का प्रतीक है। देवी के कर में पाश और अंकुश वासना और क्रोध के प्रतीक है। 'मानस ईख–दण्ड का धनुष है।

(१०) **मनोरूपेक्षुकोदण्डा** – हाथ में जो धनुष है, वह महामाया के मानस रूपी ईख के डंडे से बना है। गन्ने का धनुष जो मनुष्य के मन से बना हुआ है, उसका मूल स्थान मेरे हृदय में हो अर्थात् उसकी जड़ मेरे हृदय में हो।

(११) **पञ्चतन्मात्रसायका** – पाँच सूक्ष्म तन्मात्राओं के बाण हैं। भगवती त्रिपुरा के पाँच बाण इन्हीं पाँच प्रकार के पुष्पों के हैं, पाँचों ज्ञानेन्द्रियों से सम्बन्धित पाँच प्रकार के विषय– शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्धात्मक पाँच पुष्पबाण हैं। पाँच पुष्पबाण वाला धनुष कामदेव का भी अस्त्र है।

(१२) **निजारुणप्रभापूरमज्जद्ब्रह्माण्डमण्डला** – भगवती सम्पूर्ण जगत् को अपने गुलाबी तेज में स्नान करा रही है। प्रात:काल न्यास और ध्यान के लिए गुलाबी तेज का समय उपयुक्त है।

(१३) **चम्पकाशोकपुन्नागसौगन्धिकलसत्कचा** – उनके केश चम्पक, अशोक, पुन्नाग, सौगन्धिक के पुष्पों से सजे हुए हैं।

(१४) **कुरुविन्दमणिश्रेणीकनत्कोटीरमण्डिता** – कुरुविन्द मणियों की लड़ों से उनका मुकुट चमचमा रहा है। जो इन मणियों से सुशोभित देवी का ध्यान करेगा, देवी के प्रति उसकी निष्ठा एवं भक्ति में वृद्धि होती रहेगी।

(१५) **अष्टमीचन्द्रविभ्राजदलिकस्थलशोभिता** – उनका मस्तक अष्टमी के चन्द्रमा के समान उज्ज्वल एवं निर्मल है। अष्टमी के चन्द्रमा में आठ कलाएँ होती हैं। अत: उस दिन उसके दोनों (प्रकाशित एवं अप्रकाशित) भाग समान होते हैं।

(१६) **मुखचन्द्रकलङ्काभमृगनाभिविशेषका** – उनके ललाट पर मृग की नाभि से उत्पन्न कस्तूरी का तिलक लगा है। यह ठीक वैसा ही है जैसा कि चन्द्रमा में उसके कलंक को प्रकट करने वाला काला बिन्दु।

(१७) **वदनस्मरमाङ्गल्यगृहतोरणचिल्लिका** – देवी का मुख या वदन कामराज के सदन जैसा सुन्दर है। ऐसा प्रतीत होता है कि कामराज का जो मंगलमय प्रासाद है, वह उसकी तोरण=वहिर्द्वार है और उसके मेहराब के समान देवी की धनुषाकार भृकुटि है।

(१८) **वक्त्रलक्ष्मीपरीवाहचलन्मीनाभलोचना** – उनके नेत्र ऐसे लग रहे है, जैसे उनके मुखरूपी सुन्दर सरोवर में चञ्चल मछलियाँ हैं। मछलियाँ चञ्चल होती हैं और नेत्र भी चञ्चल माने जाते हैं। जिस प्रकार मछलियाँ अपनी दृष्टिमात्र से अपने बच्चों का पालन करती हैं, उसी प्रकार माँ के कटाक्ष मात्र से भक्तों का पोषण होता है।

(१९) **नवचम्पकपुष्पाभनासादण्डविराजिता** – नव विकसित चम्पा का पुष्प केवल कलिका ही नहीं, अपितु इसी के विकसित होने पर गन्ध फैलती है। देवी का नासा–दण्ड ठीक इसी प्रकार है।

(२०) **ताराकान्तितिरस्कारिनासाभरणभासुरा** – उनके नासादण्ड में मोती हैं। वे तारा की कान्ति

को भी फीका बना रहें हैं अथवा तिरस्कृत कर रहे हैं।

(२१) **कदम्बमञ्जरीक्लृप्तकर्णपूरमनोहरा** – उनके कर्णफूल कदम्ब–मंजरी से कल्पित किये गये हैं। ये कानों के ऊपरी भाग में हैं। ये चन्द्रमा से भी अधिक मनोहर हैं।

(२२) **ताटङ्कयुगलीभूततपनोडुपमण्डला** – देवी के दोनों कानों में ताटंक (बालियाँ) हैं। ये साधारणतया स्वर्ण की होती हैं। इनका आकार भी गोल है। माँ के कानों की ये बालियाँ ही सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डल हैं। सूर्य और चन्द्रमा को देवी का स्तन और नेत्र भी बताया गया है।

(२३) **पद्मरागशिलादर्शपरिभाविकपोलभुः** – माँ के कपोल उस पद्मरागमणि के समान लालिमा लिये हुए हैं, जो अत्यन्त तेजवान् निर्मल होती है और दर्पण के समान उसमें प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। तात्पर्य यह है कि कपोल अत्यन्त दिव्य हैं। वे कामेश्वर का प्रतिबिम्ब ग्रहण करने में समर्थ हैं।

(२४) **नवविद्रुमबिम्बश्रीन्यक्कारिदशनच्छदा** – उनके अधरो के सामने बिम्बफल तथा नव मूँगों का रंग भी लज्जित हो जाता है। नारियों के अधरों की तुलना साधारणतया बिम्बफल से की जाती है, किन्तु यहाँ तो जगत्–जननी के अधरों की उपमा देनी है। माँ का सौन्दर्य अपार एवं अतुलनीय है। इसके साथ ही अधरों को 'दशनच्छदा' भी कहा है, अर्थात् भगवती दशनों का आच्छादन कर रही हैं।

(२५) **शुद्धविद्याङ्कुराकारद्विजपङ्क्तिद्वयोज्ज्वला** – वे अपनी दंतपंक्तियों के साथ तेजोमय आभा से ऐसी प्रकाशमान हैं, जैसे शुद्ध विद्या की कलिका। शुद्धविद्या त्र्यक्षरी मंत्र भी है। यह बत्तीस दीक्षाओं का अंकुर है। अतः देवी का साक्षात् उन्हीं सौभाग्यशाली व्यक्तियों को होता है जिनकी आत्मा ३२ दीक्षाओं से पवित्र हो चुकी होती है।

(२६) **कर्पूरवीटिकामोदसमाकर्षिदिगन्तरा** – उनके मुख में कर्पूरवीटिका है, जिसकी सुगन्ध समस्त दिशाओं को आकर्षित कर रही है। यह वीटिका एला, लवङ्ग, कस्तूरी, केसर, नागर, जावित्री, खदिर आदि ६४ वस्तुओं को मिलाकर बनायी जाती है।

(श्रीललितासहस्रनाम भाष्य शृंखला गतांक से आगे अगले अंक में)

श्रीविद्या साधना पीठ की गतिविधियाँ

डॉ० रवि अग्रवाल

पूर्व में प्रकाशित श्रीविद्यावार्ता–अमृत महोत्सव विशेषांक के पश्चात् पीठ द्वारा महत्त्वपूर्ण अनेक क्रियाकलाप एवं घटनाएँ हुई, जिनका विवरण निम्नवत् है–

पूज्य गुरुजी के एकादश दिवसीय अमृतमहोत्सव के अवसर पर प्रतिदिन एक लक्षार्चन, विद्वत् सभा, विदुषीसभा, संस्कृतकविसम्मेलन, गोष्ठी, विद्वत्सम्मान, वसंत पूजा आदि के आयोजन हुए। उस समय नगर के संकटमोचनमंदिर में हुई हृदय विदारक घटना के कारण कार्यक्रम को संक्षिप्त कर दिया गया था। शेष कार्यक्रम पूज्य गुरुजी के सान्निध्य एवं पीठ के उपाध्यक्ष डा० विनोद दूबे जी के मार्गदर्शन में तीन माह पश्चात् २६ जून से १० जुलाई २००६ तक कोट्यिर्चन का आयोजन द्वारा पूर्ण किया गया। एकादश दिवसीय कोट्यिर्चन का समापन रात्रिजागरण, हवन, बटुक, कुमारी, सुवासिनी पूजा के साथ सम्पन्न हुआ, जिसके रात्रि जागरण कार्यक्रम में भूतपूर्व सांसद एवं वरिष्ठ अधिवक्ता न्यायविद् श्री लक्ष्मीमल सिधवी जी का मुख्य अतिथि के रूप में आगमन हुआ और उन्हें पूज्य गुरुजी द्वारा उत्तरीव तथा सम्मान पत्र प्रदान किया गया। कर्नाटक के तत्कालीन राज्यपाल महामहिम, श्री टी० एन० चतुर्वेदी जी का भी आगमन हुआ और उनको भी पूज्य गुरुजी ने सम्मानित किया। इस अवसर पर महामहिम ने कहा उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत अधिक समृद्ध है जिसका कारण वहाँ अधिकांश घरों में दैनिक ललितासहस्रनाम पाठ है।

२००७ माघमास प्रयागराज में संगम तटपर माह पर्यन्त श्रीललिता सहस्रनामकोट्यर्चन सहस्त्रयाग का आयोजन हुआ। जिसके अन्तर्गत भगवती पराम्बा के एक करोड़नामार्चन दीक्षित साधक एवं साधिकाओं द्वारा विभिन्न प्रकार के पुष्पो, कुमकुम, अक्षत्, तिल, बिल्वपत्र, शुष्क फलों विभिन्न प्रकार के फलों, स्वर्ण पुष्प के साथ रत्नों से भी भगवती का नामार्चन किया गया। रात्रि जागरण कार्यक्रम में काशी के विद्वानों को स्वर्णमुद्रा एवम् उत्तरीय प्रदान कर गुरुजी ने सम्मानित किया।

श्रीविद्या साधना पीठ भवन के सम्मुख (पश्चिम) में लगभग ४००० स्क्वायर फिट की भूमि सन् २००४ में खरीद की गयी थी, उस भूमिपर एक भव्य उपासना मण्डप का निर्माण

प्रारम्भ किया गया। इसका शिलान्यास वैदिक–तान्त्रिक विधि से स्वयं पूज्य गुरुजी द्वारा किया गया और मंदिर का निर्माण गुरु जी की सतत देख–रेख में प्रारम्भ हुआ। पूज्य गुरुजी की पूर्व कल्पना एवं विचार था कि मन्त्र तथा योग का सामंजस्य कर सफलता पूर्वक सरल रूप से मंत्र सिद्धि की जा सकती है, अत: उन्होंने साधकों को योग के साथ मंत्र का जप अभ्यास कराने हेतु भूमिगत एक भव्य हाल ''मंत्र महायोगपीठ'' का निर्माण करवाया, एवं भूतल पर भव्य मंदिर प्रांगण का निर्माण जून २००८ तक पूर्ण करवा लिया गया।

उपासना प्रागंण में स्थापित होने वाली भगवती ललितामहात्रिपुरसुन्दरी श्रीशांकरी देवी की भव्य एवं दिव्यतम स्वरूप की कल्पना पूज्य गुरुजी के मन एवं मस्तिष्क में विराजमान थी, जिसका पूज्य गुरुजी ने स्वयं जयपुर जाकर मूर्ति बनाने वाले अर्न्तराष्ट्रीय स्तर के विशेषज्ञो कलाकारों से बड़ी गहनता तथा सूक्ष्मता के साथ विचारविमर्श कर माँ की मूर्ति का स्वरूप उन बनाने वाले के मन मस्तिष्क में स्थापित कर, एक दुर्लभ गुलाबी स्फटिक के पत्थर में स्वरूप दिलवाने का कार्य अपने सम्मुख प्रारम्भ करवाया, मूर्ति के पूर्णरूप लेने के एक साल के अन्दर स्वयं पूज्य गुरुजी ने कई बार जयपुर की यात्रा की। जिसके परिणाम आज वह सुन्दर भगवती की भव्य प्रतिमा उपासना प्रांगण में सजीव रूप में विराजमान है। प्रांगण का निर्माण तथा मूर्ति का निर्माण जून २००८ तक पूर्ण हो चुका था, अब समय था, मॉ की मूर्ति की प्राण–प्रतिष्ठा एवं श्रीयंत्र की स्थापना पूज्य गुरुजी ने गुप्त नवरात्र २०६५ आषाढ़ शुक्ल पंचमी सोमवार से वैदिक एवं तान्त्रिक पद्धतियों के द्वारा पंचदिवसीय भव्य प्राणप्रतिष्ठा महोत्सव के साथ किया गया। जिसके अनन्तर माँ के भव्य नयनाभिराम स्वरूप का साधकों को दर्शन हुआ।

भगवती के आगमन के अवसर को गुरुजी ने ४० दिवसीय उत्सव का स्वरूप देकर और भव्यता प्रदान की, जिसके अन्तर्गत कोट्यिर्चन का आयोजन नवर्निमित उपासना प्रांगण में हुआ। जिसमें सम्पूर्ण देश विदेश में रहने वाले पूज्य गुरुजी के शिष्यगणों ने उत्साह तथा श्रद्धा पूर्वक भाग लिया।

वर्ष २००८ में करपात्री स्वामी जी की जयन्ती के अवसर पर प्रदान किए जाने वाले पुरस्कारों के क्रम में डॉ. राजेन्द्र शर्मा, जयपुर, डॉ पुष्पा त्रिपाठी, श्रीमती ममता शर्मा, कुमारी शाम्भवी, एवं श्री डॉ. विनोद दूवे को पुरस्कृत किया गया। श्रीविद्या साधना पीठ में प्रथम उपासक श्री श्रीप्रकाश शर्मा (श्रीप्रकाशानन्दनाथ जी) को पूज्य गुरुजी द्वारा विशेष पुरस्कार प्रदान किया गया। न्यास की एक अन्य बैठक में निर्णय लिय गया कि स्वामी जी की जयंती पर स्वामी

करपात्री स्मृति पुरष्कार के अधीन प्रतिवर्ष एक उच्च कोटि के श्रीविद्या उपासक विद्वान् को ५१००० (रूपये इक्यावन हजार) के पुरस्कार एंव को दो लेखकों को ११–११ हज़ार तथा एक लेखक को १० हजार तथा दो लेखकों को ५–५ हजार रूपये से सम्मानित किया जाय। जिसके अन्तर्गत वर्ष २००८ में स्वामी जी की जयन्ती के अवसर पर सम्पूर्णनन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति वी. कुटुम्ब शास्त्री जी को ५१०००/– रूपया प्रदान कर सम्मानित किया गया।

विगत वर्ष में अमृत्सव महोत्सव के अन्तर्गत श्रीविद्या उपासकों के द्वारा लिखित उच्च कोटि के लेखों का चयन करते हुए चार लेखकों को ११००० (ग्यारह हजार) रूपये की धनराशि से पुरस्कृत किया जाए। यह पुरष्कार श्री स्वामी करपात्री जी के जयन्ती समारोह पर दिया जाएगा– यह निर्णय भी लिया गया।

न्यास मण्डल द्वारा यह निर्णय भी लिया गया कि श्रीविद्या उपासकों को प्रोत्साहित करने हेतु पॉच उपासकों को एक–एक हज़ार रूपये तथा पांच उपासकों को ५–५ सौ रूपये की प्रोत्साहन धनराशि भी स्वामी जी की जयन्ती समारोह पर प्रदान की जाए।

न्यास–मण्डल द्वारा एक अन्नक्षेत्र को संचालित करने हेतु स्वीकृति प्रदान की गई, इसमें यह निर्णय लिया गया कि मन्दिर प्रांगण में निरन्तर अन्नक्षेत्र का संचालन किया जाय, जिसमें विद्यार्थियों, दण्डी, सन्यासी, ब्रह्मचारी, साधकों को प्रतिदिन भोजन कराने की व्यवस्था हो। साथ ही प्रतिवर्ष माघ मेलें में एक अन्नक्षेत्र चलाने की भी स्वीकृति की गई।

भगवती श्रीं शांकरी देवी की पूजा हेतु शुद्ध दूध की आवश्यकता को देखते हुए नियमित रूप से एक गाय रखने का निर्णय भी लिया गया। जिसके लिए गौशाला का निर्माण कराया गया।

शिष्यगणों ने श्रीविद्यार्णव के प्रकाशन पर चर्चा करते हुए श्री गुरुजी से उक्त दुर्लभ ग्रन्थ का हिन्दी भाष्य यथाशीघ्र प्रकाशित करवाने का अनुरोध किया। (विदित हो कि पूज्य गुरुजी उक्त दुर्लभ ग्रन्थ का हिन्दी भाष्य कर रहे थे।)

न्यासी एवं कोषाध्यक्ष श्री प्रतापशंकर जी पण्ड्या के निधन से रिक्त न्यासीपद पर श्री इन्द्रेश बत्रा दिल्ली को न्यासी चुना गया। भगवती श्री शांकरी देवी के प्राण प्रतिष्ठा के पश्चात् प्रांगण तथा उससे जुड़ी व्यवस्थाओं के कुशल संचालन हेतु पूज्य गुरुजी की इच्छानुसार एक पृथक् न्यास शांकरी देवी सेवा संस्थान गठित हुआ। प्रतिवर्ष स्वामी जी की जयन्ती के अवसर पर श्रीविद्या उपासक विद्वान् को पीठ द्वारा दिए जाने वाले ५१००० रूपये के पुरस्कार हेतु वर्ष

२००९ के लिए प्रो. कमलेशदत्त त्रिपाठी का चयन किया गया, और स्वामी जी की जयन्ती पर यह पुरस्कार उन्हें पूज्य गुरुजी द्वारा प्रदान किया गया।

वरिष्ठ लेखकों को दिए जाने वाले पुरस्कारों में पं. रेवा प्रसाद द्विवेदी, तथा डॉ. सुनीता शास्त्री को ११–११ हज़ार रूपये के पुरस्कार प्रदान किये गये। मंदिर स्थापना के पश्चात् से ही गुरुजी गंभीर रूप से अस्वस्थ हुए और लगभग उनका स्वास्थ्य शनैः शनैः क्षीण ही होता गया और ३० सितम्बर २००९ एकादशी तिथि को गुरुजी शिवसायुज्य को प्राप्त हुए। पूज्य गुरुजी के उक्त समाचार की जानकारी होने पर समस्त शिष्य तथा साधको में शोक व्याप्त हो गया। पूज्य गुरुजी के शिवसायुज्य प्राप्त होने के पश्चात् उनके पुत्र एवं शिष्य श्रीप्रकाशानन्दनाथ जी ने समस्त और्ध्वदैहिक कृत्य वैदिक एवं तान्त्रिक विधि द्वारा सम्पादित किए। पूज्य गुरुजी के शिवसायुज्य प्राप्ति के पश्चात् न्यासी मण्डल तथा शिष्य वर्ग की आवश्यक बैठक में गुरुपुत्र एवं शिष्य श्रीप्रकाशानन्दनाथ जी को सर्वसम्मति से पूज्य गुरुजी के रिक्त स्थान पर श्रीविद्यासाधनापीठ का अध्यक्ष चुना गया एवं सचिव पदपर प्रो. कमलेश दत्त त्रिपाठी का चयन किया गया। (वर्तमान में डॉ. विनोद दूबे उपाध्यक्ष, श्री विजय कुमार सिंह, इन्द्रेश बत्रा न्यासी सदस्य हैं) शोक सभा में उपस्थित सदस्यों ने कहा कि पूज्य गुरुजी के निधन से हम सभी को गहरा दुःख हुआ है। गुरुजी ने धर्म, समाज, संस्था एवं शिष्यों के उत्थान के लिए अपना पूरा जीवन समर्पित किया, उनका निधन धर्म, संस्था, समाज एवं शिष्यों के लिए ऐसी क्षति है, जो कभी भी पूर्ण नही हो सकती। उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि उनके आत्मा की शान्ति, उनके बताये गये रास्ते पर चलने तथा उनके द्वारा संकल्पित कार्यो को पूर्ण करने में ही होगी। सभी ने गुरुजी के चित्र पर पुष्पांजलि अर्पित की तथा श्री गुरुजी के आभामण्डल, व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर चर्चा की। सभा में उपस्थित सभी लोगों ने भगवान् विश्वनाथ तथा पराम्बा भगवती महात्रिपुरसुन्दरी से प्रार्थना की वह उन्हें शास्त्र सम्प्रदाय में निरूपित गति प्रदान करें।

श्री गुरुभ्यो: नम:

Sri Vidya : An experience

*Indresh Batra
New Delhi

All schools of thoughts have evolved from the following five basic questions :

1- What is the composition of this body ?

2- What is prana and how does it interact wiht the material body ?

3- What is the resason behind the creation of matter ?

4- What is soul or atma and how to experience it ?

5- How dose one attain transcendence, Liberation and freedom ?

The whole concept of spirituality in various schools of thoughts revolves around this.

Although man has amassed enormous wealth and comforts, he still finds himself dissatisfied. There is no permanence in the joy derived from material gains. The real joy and everlasting bliss can be had only when man realizes himself.

We know that we are a male or female, British or German, Christion or Jew. However, from spiritual view point they are irrelevant for the quest of self. This quest of self is very important as it is only as a human being that we can know our true essence which other forms of creation are not aware of.

However, it is becoming increasingly dificult for a normal human being to pursue the path of self-realization as it is perceived to be the path of renunciation. With the information age, the modern man is living through, it is difficult not to get influenced and get attracted to. It becomes a hobson' choice of pursuing either the path of materialism of spiritualism.

This fight is very basic. A man has desires and today are means to achieve them whit ease. A man cannot move away from his base nature and whole life is wasted in struggling through it. Excess of both the lives which is material and what would be perceived spiritual keeps pushing towards each other as a pendulum. A lot of Hindu texts are interpreted as in negation of life and which is a difficult starting point. To tell this a modern day 18 year old or a busy mid 30s executives is a sure shot non starter.

I am always surprised with the lack of awareness of a great school of thought Tantra which might be older than Vedas as well. The tantric tradition is more in accordance wiht the lifestyle we lead today.

The word Tantra is made up of two syllables, 'tanoti, which means expansion and' trayate-which means liberation. Thus the word Tantra has vast connotations. It signifies the expansion of mind and liberation of energy from clutches of matter.

Tantra is not opposed to change and adaptation according to the circumstances and sitrations that confront man.

The fact that does not deny anything and does not ask for any suppression is a great strarting point. No matter what kind of person you are Tantra offers a way to bring you closer to enlightment. This is the uniqueness of Tantra as it never seeks to reform. Even if you are in clutches of anger. doubt or delusion, so not wait for the day to conquer them but start from where you are.

However, what would appeal to a rational mind more is the scientific explanation enshrined in Tantra. It basically talks of an universel cosmic energy. Tantra asserts thet the link be'tween the body, mind and awareness is Prana which is a direct evolute of consciousness and is described as the medium for the awakening and ascent of consciousness.

It talks about the reunion of energy in the individual matter and cosmic energy. It talks about Mantra which are comprised of words which area vibratory sounds which are energy and the whole concept looks rational than arbitrary.

I was based in united states of America and was always deeply searched for the self-realization or whatever I understood of it. I had brushes with various systems right from Osho to ISCON or Sikhism, which as a child I used to get to know when I would go to Gurudwara with my father.

I was getting to mid thirties and was alwayas had a fear that my life is passing by without any spiritual progress. I am a person for whom belief is a very difficult thing and spiritual rites unless explained hold no meaning.

I had a good understanding of theories but controlling mind was a difficult subject. I with the grace of Ma Bhagwati got to go to Varanasi to the Sadhana Peeth. I was attracted to it because it was explained to me as an esoteric science and to my egoestic mind it appealed.

I read a lot more about it, but got more confused and then I realized how reading alone is not at all enough and the only way is Guru. My revered Guru Shri Sitaram Kaviraj Ji was one of the most intelligent man I had ever come in touch with. He had for the first time convincing answers for my questions and won over my intellectual self. That defeat of mine had a paramount effect on me as I was ready to listen and believe.

Mantra-diksha was given to me by my revered Guru and also was supported by him and his spiritual succdessor (Shree Prakashananad Nath) who has the qualities of his biological father and my Guru.

Inspite of my deep sceptecism, I would do my Mantra and it had a deep transformative impact on me. For the first time I Could see that there are live metaplysical changes.

Mantra helps you to concentrate which is definitively the most difficult but the most needed step for quest of self throuhg internal journey. However the bigger thing for me was the surrender aspect of life which is the most beautiful. You not being responsible but your mother would take care is the biggest calm which is so rare to get.

I am not at all in a position to talk about Sri Vidya as there are scholars after scholars who are at least thousand time better than me.

However, I can say from experience that it does make its presence felt. One is not the same person again.

I don't think that anyone should see any spiritual sadhna from a 'chamatkara point of view, but my personal experience of last three years have given me various experiences to say that it imdeed is chamatkarika vidya.

I owe this all to my revered Guru who was one of the most down to earth and humble person I have ever seen. He was alwaya full of Karuna and I consider myself lucky to have received his abundant love.

I also owe a lot to Shree Prakashananad Nath without whose support I would not have progressed. His positive energy is so contagious.

I pray to Ma Lalita Tripursundari to bless me to progress on this path and make me a tool to spread this knowledge around through my reverd Guru's establishment Sri Vidya Sadhna peeth.

If you can experience it, you would know what I am talking about. sent from BlackBerry (r) on Airtel.

श्री विद्या साधना पीठ

शिव सदन, गणेश बाग, नगवाँ, लंका, वाराणसी।

३१.०३.२००८ को आर्थिक चिट्ठा

कोष एवं दायित्व		धनराशि	सम्पत्तियाँ	धनराशि
न्यास निधि				
प्रारम्भिक शेष	१०,३२१,७१३.००		अचल सम्पत्तियाँ	४,६९८,२९०,००
जोड़ चालू वर्ष से प्राप्त	४,९७,०००.००	१०,८१८,७१३.००	(संलग्नक अचल सम्पत्तियाँ सी)	
प्रकाशन कोष	३८६,७५१.५०		निवेश	
जोड़ चालू वर्ष में प्राप्ति	५००,००.००	८८६७५१.५०	बैंक आफ बड़ौदा में सावधि जमा	३,१५८,२२६.००
कार कोष		४.५०.०००.००	गवर्नमेंट आफ इण्डिया बाण्ड	५०,००,०००.००
छात्रवृत्ति कोष		१.५०.००.००	**कोटक म्युचुअल फण्ड**	५०,००,०००.००
स्वामी करणत्री जी स्मृति पुरस्तकार कोष	२५०,०००.००		यू०टी०आई० म्युचुअल फण्ड	
जोड़ वर्ष में प्राप्ति	२५०,०००.००	५००,०००.००	रिलायन्स म्युचुअल फण्ड	२,००,०००.००
संचय एवं कोष	७१५,६१३.९२		बिरला म्युचुअल फण्ड	२,००,०००.००
			चालू सम्पत्तियाँ	
जोड़ा चालू वर्ष की आय	२४०,०४९.३२	९५५,६६३.२४	प्रकाशन रहतिया	९९,६३५.००
उपासना कोष प्रा० शेष	३९४,१३८.८०		सुरक्षित जमा– टेलीकाम	१५,०००.००
जोड़ चालू वर्ष में प्राप्ति	५४५,४०१.००		सुरक्षित जमा– बिजली	१,५००.००
घटाया चालू वर्ष में	१४३,३५८.००	७९६,१८१.८०	विश्वविद्यालय प्रकाशन	४२०.००
			गिरी ट्रेडिंग एजेन्सी	३,०२९.००
			टी.डी.एस. २००६–०७	१०,५३४.००
			टी.डी.एस. २००७–०८	६६,०७९.००
			रोकड़ एवं बैंक शेष	
			बैंक आफ बड़ौदा, लंका	६९९,७५९.४४
			रोकड़ हाथ में	४,८३७.१०
योग		१४५५७,३०९.५४	योग	१४,५५७,३०९.५४

<u>सनदी लेखाकर प्रतिवेदन</u>

आज दिन में संलग्न प्रतिवेदन के आधार पर

कृते सिंह दीक्षित एण्ड कं०

सनदी लेखाकार

राजेन्द्र सिंह

भागीदार

कृते– श्री विद्या साधना पीठ

अध्यक्ष

दिनांक : १२.०७.२००८

स्थान : वाराणसी

श्री विद्या साधना पीठ

शिव सदन, गणेश बाग, नगवाँ, लंका, वाराणसी।

३१.०३.२००८ के लिए समाप्त हुए वर्ष का आय–व्यय विवरण

व्यय का विवरण	धनराशि	आया का विवरण	धनराशि
प्रशिक्षण खर्च	१,४३८२५.००	बैंक आफ बड़ौदा से ब्याज	२,४१,५४२.००
वेतन खर्च	७९,०२५.००	रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया से ब्याज	४००,०००.००
फलीफान खर्च	७,९४८.००	बचत खाता से प्राप्त ब्याज	१२,५४१.००
यात्रा व्यय	३३,१००.००	दान पात्र व अन्य प्राप्तियाँ	३,३७,१४०.००
छपाइ एवं लेखन सामग्री	१,३६०.००		
दैनिक समाचार पत्र एवं पत्रिका	१,२४८.००		
बैंक खर्च	७,१०७.००		
जनरेटर रख–रखाव खर्च	२,५२५.००		
कार रख–रखाव खर्च	६,९४४.००		
टाईप एवं फोटो स्टेट	१,०५०.००		
बिजली खर्च	४,२८४.००		
डाक खर्च	६०९.००		
विविध व्यय	५,२४६.००		
मरम्मत एवं रख–रखाव खर्च	२८,८२५.००		
मोपेट रख–रखाव खर्च	४७७.००		
बीमा खर्च	१०,२४३.००		
प्रकाशन विभागों से हानि	१,०६,७१२.३४		
ह्रास	४,१०,६४५.३४		
व्यय से अधिक आय स्थानान्तरित किया आर्थिक चिट्ठा में	२,४०,०४९.३२		
योग	९,९१,२२३.००	योग	९,९१,२२३.००

प्रकाश विभाग (व्यापार खाता)

व्यय का विवरण	धनराशि	आय का विवरण	धनराशि
प्रारम्भिक रहितया	७१,२४८.८४	पुस्तकों की बिक्री	१०,९४८.००
प्रकाशन खर्च	८४,५९१.५०	उपासना हेतु मुफ्त वितरण	२६,०४५.००
प्रकाशन वेतन	८७,५००.००	अन्तिम रहितया	९९,६३६.००
		आय से अधिक व्यय स्थानान्तरित किया आय–व्यय खाते में	१,०६,७१२.३४
योग	२,४३,३४०.३४	योग	२,४३,३४०.३४

<u>सनदी लेखाकर प्रतिवेदन</u>

आज दिन में संलग्न प्रतिवेदन के आधार पर

कृते सिंह दीक्षित एण्ड कं०

सनदी लेखाकार

राजेन्द्र सिंह

भागीदार

कृते– श्री विद्या साधना पीठ

अध्यक्ष

दिनांक : १२.०७.२००८

स्थान : वाराणसी

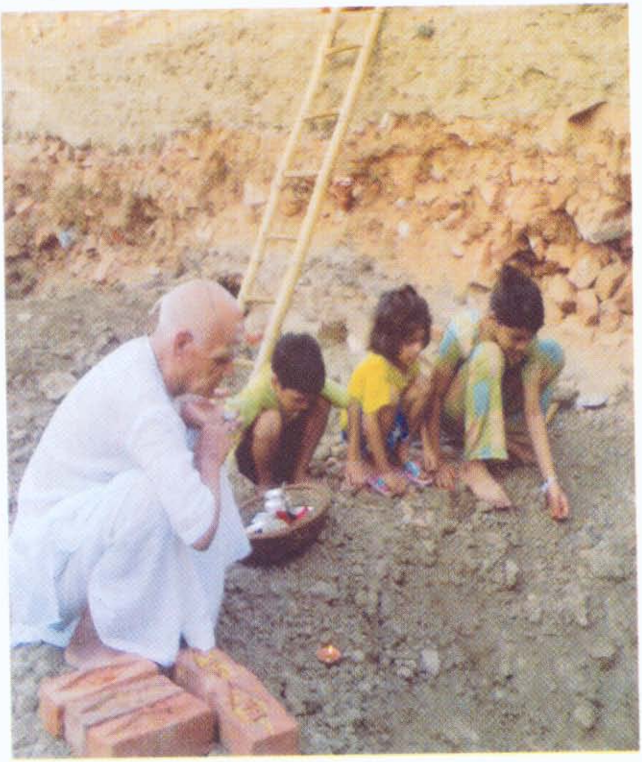

अनुत्तराम्नायअधिष्ठात्री भगवती श्री शांकरी देवी के मंदिर निर्माण के पूर्व शिला पूजन करते पूज्य गुरु देव।

अनुत्तराम्नायअधिष्ठात्री भगवती श्री शांकरी देवी मंदिर प्रांगण

अनुत्तराम्नायअधिष्ठात्री भगवती श्री शांकरी देवी के मंदिर की प्राणप्रतिष्ठा के अवसर पर आरती करते पूज्य गुरु देव के साथ प्रकाशानन्द नाथ

अनुत्तराम्नायअधिष्ठात्री भगवती श्री शांकरी देवी के मंदिर स्थापना के अवसर पर श्रीललितानामकोटि अर्चन कराते पूज्य गुरुदेव तथा अर्चन करते श्री प्रकाशानन्दनाथ एवं दीक्षित बटुक गण।

करपात्री जयंती समारोह को सम्बोधित करते पूज्य गुरूदेव

करपात्री स्वामी जयंती पर सम्मानित विद्वतजन पूज्य गुरूदेव के साथ

महामहिम राष्ट्रपति श्री के.आर. नारायणन् पूज्य गुरूदेव को सम्मानित करते हुए

साधना पीठ में अध्ययनरत बटुक गण

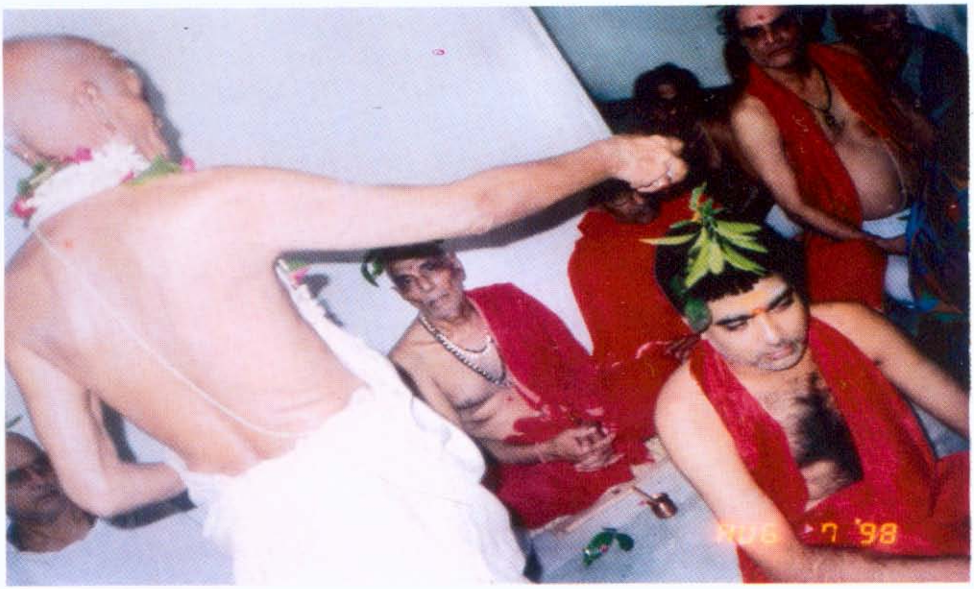

अनुत्तराम्नायअधिष्ठात्री भगवती श्री शांकरी देवी के अवसर पर कुमारी एवं सुवासिनी पूजन करते श्री प्रकाशानन्दनाथ जी एवं समवेद श्रीविद्या साधना पीठ परिवार

श्री प्रकाशानन्दनाथ जी का पूर्णाभिषेक सम्पन्न कराते हुए पूज्य गुरूदेव

श्रीविद्यासाधना पीठ में अनुत्तराम्नाय अधिष्ठात्री श्री शांकरी देवी की स्थापना व स्वामी जी की जयंती के अवसर पर पूज्य स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती करपात्रस्वामी स्मृति पुरस्कार से प्रो. वी. कुटुम्ब शास्त्री को सम्मानित करते हुए पूज्य गुरुदेव, कर्नाटक के तत्कालीन राज्यपाल श्री टी.एन. चतर्वेदी, श्रीविद्यासाधना पीठ न्यास के उपाध्यक्ष डा. विनोद दूबे, प्रो. कमलेशदत्त त्रिपाठी तथा अन्य विद्वतजन एवं अतिथि।

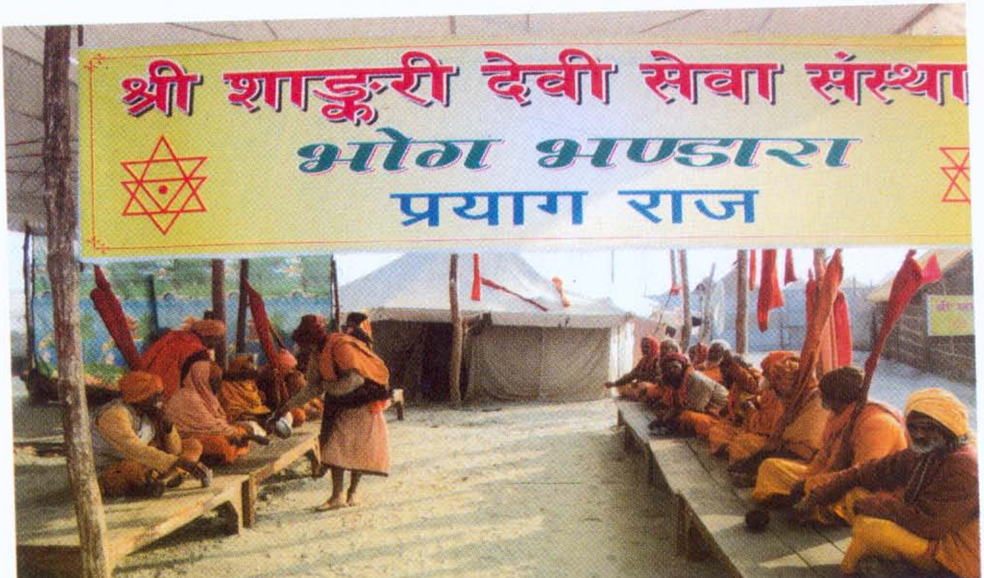

प्रयाग राज में माघ संवत् २०६६ में संगम पर माघ मेले में श्रीविद्या साधना पीठ पंडाल में श्रीशांकरी देवी सेवा संस्थान द्वारा आयोजित भोग भण्डारा में प्रसाद पाते दण्डी स्वामी गण।

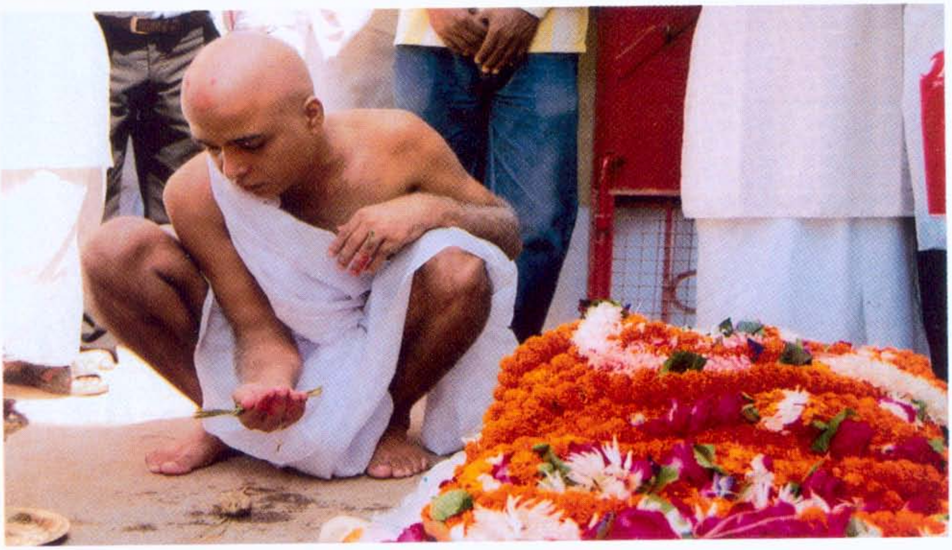

पूज्य गुरुदेव के शिवसायुज्य प्राप्ति करने के समय वैदिक तान्त्रिक व औधदेशिक कृत्य सम्पन्न करते श्री गुरुदेव के सुपुत्र एवं शिष्य एवं वर्तमान श्रीविद्या साधना पीठ अध्यक्ष श्री प्रकाशानन्द नाथ जी।

पूज्य गुरुदेव के शिव सायुज्य के पश्चात् उनकी स्मृति में आयोजित बसन्त पूजा में वेद शाखा स्वाध्य करते हुए काशी के मूर्धन्य वैदिक विद्वान।

पूज्य गुरुदेव के शिव सायुज्य के पश्चात् उनकी स्मृति में आयोजित बसन्त पूजा में काशी के वैदिक विद्वानों का पूजन करते हुए श्रीप्रकाशानन्दनाथ।

इसी अवसर पर आयोजित विद्वत् सभा में अध्यक्षता करते हुए श्रीविद्यासाधना पीठ के अध्यक्ष श्रीप्रकाशानन्दनाथ जी महजाराज, मुख्य अतिथि सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. वी. कुटुम्ब शास्त्री सभा में उपस्थित अतिथि विद्वान प्रो. रेवा प्रसाद द्विवेदी, प्रो. श्रीराम पाण्डेय, प्रो. शिवजी उपाध्याय एवं सभा संचालन करते हुए पीठ के सचिव प्रो. कमलेशदत्त त्रिपाठी।

श्रीयन्त्रम्

श्री शाङ्करी देवी मन्दिर

श्रीविद्या साधना पीठ

Printed by : Pilgrim Press, Pvt.Ltd., Lalpur, Varanasi. Ph. (0542) 2501085